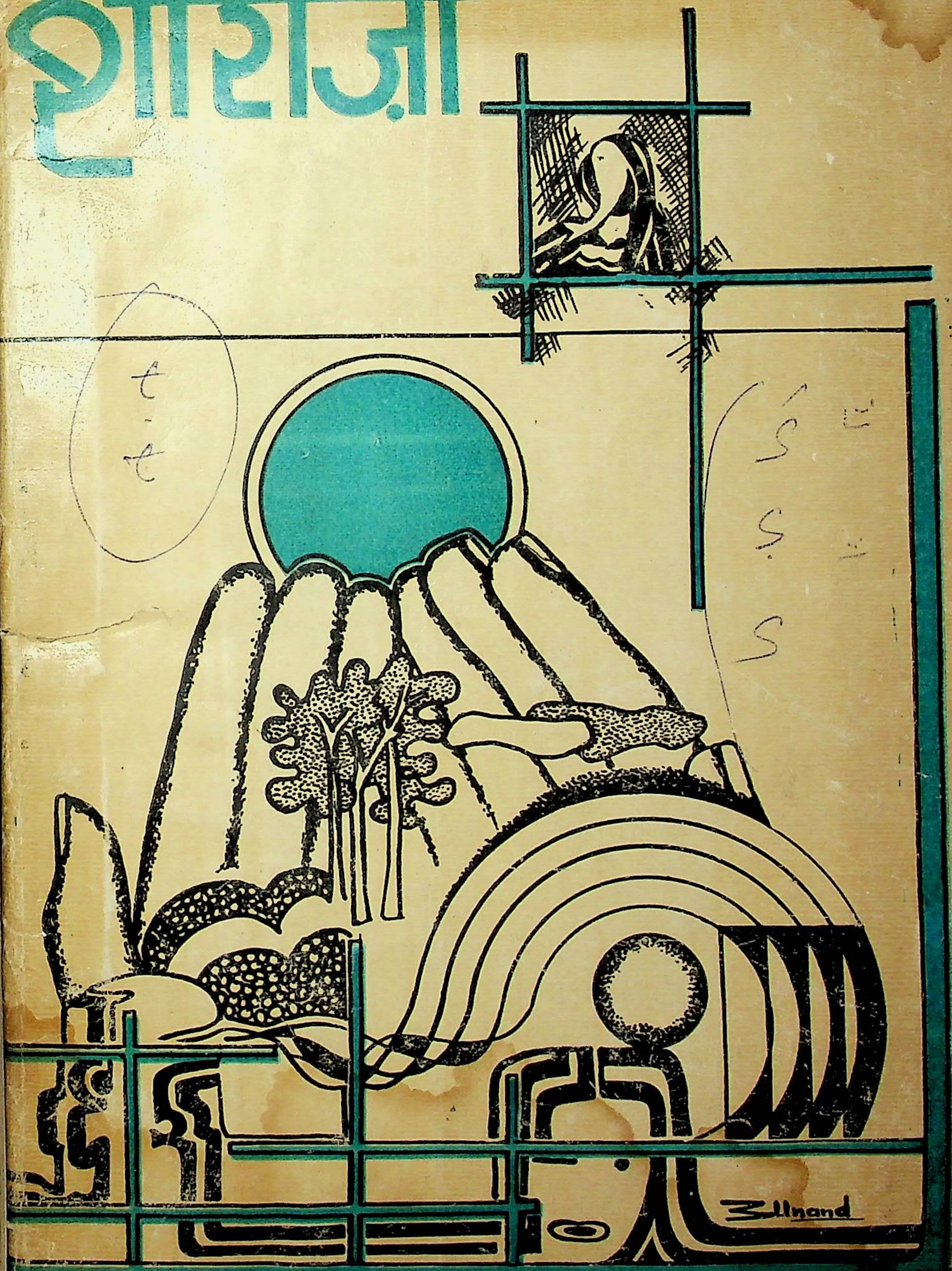
शीराज़ा



सामाजिक यथार्थ की धरोहर
आज की हिन्दी कविता

गंगा प्रसाद विमल

आज की हिन्दी कविता का फलक निर्धारित करना आसान काम नहीं है। "ग्राज" अवधि के किस पड़ाव को कहा जाय ? यह किसी दैनिक पंचांग के लिए तो मुमकिन है, साहित्य के सिलसिले में "ग्राज" का फैलाव थोड़ा भिन्न है।

हिन्दी कविता के अध्येताओं को हिन्दी कविता के नाम से लोक भाषाओं में रचित शताब्दियों पूर्व के साहित्य को परिचित कराना हमारे साहित्येतिहासकारों का काम रहा है। जबकि खड़ी बोली में हिन्दी कविता का प्रचलन हुए अभी मुश्किल से एक शताब्दी बीती है। अगर ब्रज, अवधी को हिंदी कविता में शामिल किया गया है तो बुंदेली, बघेली, पंजाबी, पहाड़ी, राजस्थानी तथा मराठी और मलयालम क्षेत्रों में इसी अवधि में रचित साहित्य को उदारतावादी दृष्टि से हिंदी में शामिल क्यों नहीं किया जाता ? मीर, गालिब तक को हिंदी कविता से वहिष्कृत करने का तर्क साहित्येतिहासकारों की साम्प्रदायिक वृति का परिचायक नहीं है क्या ? मेवाती लोकभाषा में रचित भक्तिपरक साहित्य, जो अब उपेक्षाओं के कारण जनश्रुति से भी विस्मृति की गुफा में पहुंच चुका है, क्या केवल इस कारण उपेक्षित रहा क्योंकि मेवात की बहु संख्य आबादी का सम्बन्ध किसी दुसरे धर्म विश्वास से रहा है ? ये प्रश्न हिन्दी के सुविज्ञ पाठकों के समाने इसलिए रखे जा रहे हैं कि अतीत से अपना सम्बन्ध जोड़ने की जल्दबाजी में कभी कभी साहित्य समीक्षक, इतिहासकार पाठ्यपुस्तक निर्माता, विश्वविद्यलयों के मठाधीश सप्रयोजन समकालीन साहित्य के प्रति उपेक्षा बरतते हैं। यह वास्तव में एक साम्प्रदायिक दृष्टि का ही परिचायक है। हिन्दी या हिन्दवी का जो प्रारम्भिक सूत्र अमीर खुसरो से मिलता है कई शताब्दियों बाद उसे काव्य स्वीकृति मिलती है, खड़ी हिन्दी को स्वीकार किया जाता है— उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में श्रीधर पाठक के काव्य से।

आज की हिंदी कविता का वास्तविक अतीत एक शताब्दी का है। वह एक शताब्दी जो स्वाधीनता संग्राम एवं जातीय गौरव और अपनी संस्कृति की पुनर्स्थापना के कार्य में सक्रिय

रही है। उस एक शताब्दी में भारतीय जनचित के जो सपने रहे हैं उनका क्रांतिपेक्षी मुख धीरे धीरे मोहभंग की स्थिति में विरूपित होता हुआ तब पुन: जैसे ओजपूर्ण दीखता है। यही ओजपूर्ण स्थिति आज की कविता में सामाजिक यथार्थ की उपस्थिति का जैसे प्रमाण देती है। आज कविता अर्थात जो स्वतन्त्रता के पश्चात प्रयोगधर्मी काव्य चेतना से होती हुइ कुछ दशकों में अपने आधार स्पष्ट करती, समकालीन सच को प्रक्षेपित करती चलती है। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि जो कविता आज अर्थात हमारे वर्तमान की जटिलताओं को व्यक्त करती है अर्थात एक मुख्य स्वर के रूप में हमारे वर्तमान को उसकी अन्यान्य विविधताओं में व्यक्त करती है वही आज की कविता है।

आज की कविता के संदर्भ मे इस तथ्य पर भी विचार करना आवश्यक है कि पिछले दो दशकों से कविता कि जितनी भिन्न धाराएं हिन्दी में प्रचलित हुई हैं, उनमें कुछेक तो जैसे पुरानी शैलियों का पुनर्प्रचलन ही हैं। "किसम किसम" की कविता में प्रो० जगदीश गुप्त ने ऐसी अनेक आन्दोलनवादी धाराओं दा उल्लेख किया है। क्या ये सब धाराएं आज की वास्तविकताओं का संवहन करती हैं? इसका उत्तर अनुमानित आधार पर ही दिया जा सकता है कि शायद ऐसा संभव नहीं है। समकालीन सृजन की मुख्यचिंता साहित्य की समस्याओं से उपजी हुई नहीं है अर्थात कलावाद आज की मुख्य चिंता इसलिए नहीं है क्योंकि वह हमारी सामुदायिकता से बहुत पिछड़ी हुई चीज रह गई है। अत: यदि सामान्य से आधारों का परीक्षण कर कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किये जायें तो यह कहना उपयुक्त होगा कि इस दौर में समाज का सत्य एक इकाई के त्य के ही समानार्थक है। यह जानने के लिए क्या एक इकाई का सत्य सचमुच प्रभावी है तो सामान्य आधार है यह जानना कि कविता के रचने की अनिवार्यताएं क्या क्या हैं? कवि किस प्रेरणा से प्रेरित है? कौन दबाव हैं कि एक कवि को कुछ कहने के लिए विवश करते हैं? स्पष्ट है पुन: निष्कर्ष के रूप में यही सामने आयेगा कि वे सामाजिक सत्य के ही दबाव हैं जो की एक कवि को रचनारत रखते हैं। कविता के सृजन के मौलिक प्रश्न चाहे परम्परागत उत्तरों में आज अपने निदानों की अपेक्षा न रखें। प्रश्नों के आलोक में ही हम उत्तर पा सकते हैं। कविता का वर्तमान विविधताओं से भरा पड़ा है, क्या यह हमारे सामाजिक जीवन का ही प्रतिबिंबक नहीं है जहां वैविध्य जीवन का एक सत्र है। इस सामान्यीकरण से मैं इस निष्कर्ष की ओर पहुंचना चाहता हूं कि सृजन और जीवन अंतरावलम्बित हैं। एक किसी दूसरे आधार पर। और वह आधार यथार्थ का हो सकता है। परन्तु यथार्थ अपने आप मे कोई अलग वस्तु नहीं है वह मनुष्य और सृष्टि के सम्बन्ध में ही प्रासंगिक है। यथार्थ और समाज पर उनके रूपों में विचार हो चुका है। अनेक पारिभाषिक किस्म के अध्ययनों के उपरान्त भी यदि उस पर अब विचार किया जाता है तो उसका प्रयोजन यही है कि सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंबन और संरक्षण साहित्य में किस रूप में उपलब्ध है।

क्या किसी ऐसे साहित्य की कल्पना की जा सकती है जिसका सम्बन्ध मनुष्य से न हो? साहसी से भी साहसी निषेधवादी मानव निरपेक्ष साहित्य की कल्पना नहीं कर पाये हैं। यह निर्विवाद है कि साहित्य तथा सर्जना की हर गतिविधि के केन्द्र में आदमी है। आदमी अर्थात समाज की एक अविभाज्य इकाई या कहें कि प्रतिनिधि। स्पष्ट है कि आदमी के बिना समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आदमी समाज बनाता है। समाज एक मूर्त व्यवस्था है। आदमी की कल्पना से उसे रूपाकृति मिली है। यह व्यवस्था आदमी को भी प्रभावित करती है। कहा जा सकता है कि समाज आदमी के अंत: बाह्य को

प्रभावित करता है, उसे अनुशासित करता और व्यवस्थित भी करता है। समाज आदमी को सभ्यतागत, संस्कृतिगत पहचान भी देता है। यह विवाद से परे है कि सामाजिक व्यवस्था आदमी के भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। परन्तु आज समाज एक ऐसी जटिल अवधारणा बन गई है कि उसे हम किसी सरलीकरण से परिभाषित नहीं कर सकते। अब मनुष्य और समाज के रिश्तों को किसी एक आयाम से व्याख्यायित करना कठिन काम है। इसका कारण है कि आदमी और समाज निरन्तर द्वन्द्व की स्थिति में रहते हैं। मनुष्य की अपनी ही निर्मिति समाज आज उसके अपने संवेदन, भावबोध एवं अपनी स्वच्छन्द अपेक्षाओं से बाहर की चीज हो गई है। व्यक्ति को सर्वोपरि मानने वाले लोग अब समाज को मनुष्य द्वारा आविष्कृत, मनुष्य का स्वनिर्मित बंदीगृह मानते हैं। यह अनुभावना कि समाज क्या है, वह किस रूप में मानव उपस्थिति को विचलित करता है। वास्तव में कविता के भी उतने ही विषय हैं जितने समाज शास्त्र और नृवंश शास्त्र के। वास्तव में यही आधार है जो समाज के गोपनीय यथार्थ को व्यक्ति की अस्मिता के संदर्भ में भस्मासुर जैसा विराट मान बैठते हैं। आज की सर्जना ने समाज की इन्हीं जटिलताओं को अनावृत करने के लिए दृश्य यथार्थ से भी परे, अयथार्थ लगने वाले यथार्थ को रूपायित करने का प्रयत्न किया है। जब युवा कवि भारत यायावर कहते हैं तो यथार्थ का यह दुहरापन स्पष्ट हो जाता है।

"मुश्किल है दुनिया की मश्किलों से निकलना
निकलना अपने आप से बाहर"

अर्थात दुनिया या समाज कोई बाहर की चीज नहीं है। वह स्वयं व्यक्ति के भीतर विद्यमान है। इसका अर्थ यह नहीं कि बाहर का समाज कोई अस्तित्व नहीं रखता। इसका अर्थ यह नहीं कि बाहर के सत्य से अधिक, दृष्यार्थ से अधिक वे चूलें भयावह हैं जो आदमी के अन्दर उसे मथती हैं। समाज के भयावह रूप का चित्रण यातनावादी लोग भी करते हैं किन्तु ये स्वनिर्मित कल्पनाओं से ही संघर्षरत रहे हैं क्योंकि उनके लिए बाहरी दुनिया ही उनकी शत्रु थी। आज की कविता में जहां सामाजिक अवयवों की भावात्मक उपस्थिति है वहीं कभी कभी सपाटबयानी की तर्ज पर समाज का पूरा परिगणन भी मिलता है। परन्तु यथार्थ के संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि जो कुछ है सत्य वह नहीं है बल्कि सत्य वह है जो उसे रूप देता है।

दार्शनिकों और समाजशास्त्रियों ने अपने अन्तरानुशासन सम्बन्धी अध्ययनों में साहित्य के संदर्भ में बात करते हुए अक्सर भाषा पर टिप्पणियां की हैं। भाषा के सामाजिक स्वरूप की अनुगूंज केवल भाषा शास्त्रियों में ही नहीं मिलती बल्कि उसकी उपस्थिति उन काव्य-शास्त्रियों में भी मिलता है जो भाषा से साहित्य के सत्य से परिचित होना अनिवार्य स्वीकार करते हैं। डॉ० प्रेमशंकर की मान्यता है कि भाषा एक सामाजिक इकाई है, समकालीन कविता इसे प्रमाणित करना चाहती है। यह बात डॉ० प्रेमशंकर ने कुमार विकल की कविता के संदर्भ में, व्याख्या के प्रारूप प्रस्तुत करते हुए कही है। कुमार विकल की कविता की कुछ पंक्तियां यहां दृष्टव्य हैं :—

"मैं मां के चेहरे की झुर्रियों पर
एक महाकाव्य लिखना चाहता हूँ"

वास्तव में पूरे काल की उपस्थिति, एक छोटे से बिंब में प्रस्तुत करने का अर्थ ही यही है कि एक दौर की ही नहीं बल्कि सार्वकालिक सच्चाई भाषा–बिंब की मार्फत अभिव्यक्त भी होती है तथा संरक्षित भी होती है।

समाज शास्त्री स्वीकार करते हैं विकास के कारण अन्यायजटिलताओं, असंगतियों का भी विकास होता है। समाज में अनेक अन्तर्विरोध और असंगतियां हैं–उन्हें अनावृत करने का काम सर्जना, गवेषणा और व्यक्ति की वह हल्की सी टकराहट भी करती है जो असंगतियों से ही जन्मती है। आशय यह है कि आज जिस समाज में हम रह रहे हैं वह सरल या सामान्य समाज नहीं है। वह समाज किसी एक मूल्य-व्यवस्था से बंधा नहीं है, वह एक इकाई की तरह कोई स्वायत्त वस्तु भी नहीं है। राज्य, वर्ण एवं वर्ग प्रेरित दबाव, अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव और जातीय उपचेतन–ये ऐसे पक्ष हैं जो बराबर किसी समाज को प्रभावित किये रहते हैं। फलतः समाज एक ठहरी संस्था दिखाई देने पर भी अपनी अन्त-धाराओं में व्यक्ति की या व्यक्तियों की औसत परिवर्तनकामी चाहनाओं के साथ साथ बदलता भी रहता है। यह बदलना यथार्थ को भी कोई जड़ या ठिठकी हुई वस्तु नहीं रहने देता।

देखा जाना चाहिए कि हमारे आज के समाज की वस्तुगत सच्चाइयां क्या हैं? अर्थात हमारा समाज एक पारिवारिक समाज से धीरे–धीरे आधुनिकता की ओर उन्मुख समाज में है। उसमें परम्परा की जड़ता भी है और तत्काल की ऊष्मा भी। उसमें नूतन के प्रति उल्लास भी है किन्तु अपने विनिर्मित अहं पर प्रहार सी लगने वाली वास्तविकता के प्रति हिकारत भी। इसका अर्थ हुआ कि हमारा समाज एकान्त, एक तरफा नहीं है—उसमें यथार्थ और अयथार्थ का द्वैत विद्यमान है। हमारे इस समाज की संस्थाबद्धता में भी ठीक ऐसी ही स्थिति है। अब यह कहा जाय कि यह समाज अपने विखंडन में ठहरा हुआ है तो समाज के दुहरेपन का भाव व्यक्त हो जायेगा। यहां मैं मंगलेश डबराल की एक कविता की कुछ पंक्तियां उद्धृत कर रहा हूं जो व्यंजना में इस कथन का समर्थन करती प्रतीत होती हैं :–

चारों तरफ से आते इस शोक गीत को सुनो
जिसमें कोई आवाज नहीं, कोई लय नहीं
यहां तक कि स्मृतियां भी नहीं हैं
सिर्फ रात है उन अक्षरों पर गिरती हुई
जिन्हें तुम अज्ञात लिपि की तरह पढ़ते हो रातभर।

समाज के बहुआयामी ब्यौरे–सामाजिक यथार्थ के विशाल फलक को अंकित करते हैं। यथार्थ के इस विराटत्व की झलक वर्तमान हिन्दी कविता में तो पूरी तरह उपलब्ध है परन्तु यह प्रवृति पिछले दो दशकों की कविताओं में अधिक सघनता में उपलब्ध है। तीव्रता एवं रचाव की दृष्टि से दो दशकों की कविताओं में यह त्वरा ज्यादा गहरी है। केवल दृष्टान्त के लिए 'कुआनो नदी,' 'आत्महत्या के विरुद्ध', खंड खंड पाखंड पर्व, लुकमान अली, जैसी कविताओं को लिया जा सकता है जो सामाजिक यथार्थ का संवहन अलग अलग रंग से करती हैं। वास्तव में हिन्दी की कुछके लम्बी कविताएं निश्चित ही आज के हिन्दी काव्य का प्रतिनिधित्व करती हैं–यह कहने का प्रयोजन इस अर्थ में कदापि नहीं लिया जाना चाहिए कि शेष कविताएं इस प्रतिनिधित्व से खारिज कर दी जायें जैसा हम स्वीकार करते हैं, यह मात्र दृष्टान्त हैं।

हिन्दी कविता का इतिहास जातीय स्वभाव या राष्ट्रीय-सांस्कृतिक स्वभाव का इतिहास है। समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे जैसे विद्वान अनेक प्रसंगों में इसे स्वीकार कर चुके हैं कि सृजन भी एक वैज्ञानिक के लिए उतना ही बड़ा तथ्य है जितनी घटनाएं हैं।

अत: यह स्वीकारने में कोई अत्युक्ति नहीं कि आज की हिन्दी कविता सामाजिक यथार्थ की धरोहर है—क्योंकि कविता या सृजन में सामाजिक यथार्थ के रेखांक—समाज, संस्कृति, व्यक्ति, कालगत अन्तर्विरोध, हताशा, पराजय, विफलता और पुन: एक चामत्कारिक रूप से आशावाद का सरंक्षण तथा संवहन करते हैं।

हमारे समय का सामाजिक यथार्थ सपाट नहीं है। उसकी अभिव्यक्ति भी उतनी सपाट नहीं है। वास्तव में जिस तरह समाज और उनकी संस्थाओं के विविध मुख हैं—उसी तरह सृजन की स्थिति है। साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर भारतीय जन समाज को दिशाहारा आदि न जाने क्या कहा जाता रहा है—परन्तु भारतीय कृषक में अविभाज्य आशावादिता, अदम्य संघर्ष क्षमता आदि कुछ ऐसी वास्तविकताएं हैं जो अराजकतावादियों की अतिकल्पना के अयथार्थ को उत्तर देती हैं।

कहानी

बाज़ार में एक घर

रमेश उपाध्याय

एक दिन ऐसा हुआ कि मेरी जेब कट गयी। वैसे मेरी जेब आज्ञाकारी थी। मेरा एक एक पैसा संभाल कर रखती थी। जितना कहता, उतना ही खर्च करती थी। खाली हो जाती तब भी कर्ज नहीं मांगती थी। मैं भी उसका पूरा पूरा ख्याल रखता था उसका पेट भरने के लिए मेहनत मजदूरी से लेकर नौकरी चाकरी तक कौन ऐसा काम था, जो मैंने नहीं किया। लेकिन जेबकतरों का कोई क्या करे, जो लोगों की गाढ़ी मेहनत की कमाई पर हाथ साफ कर जाते हैं। उनके आगे बेचारी जेब क्या कर सकती थी ? कट गयी।

मगर इसका नतीजा यह हुआ कि अगले दिन मेरे घर में चूल्हा नहीं जला। मैं कटी जेब के साथ चूल्हा जलाने की किसी तरकीब की तलाश में बाहर निकला। उस दिन बड़ी ठंड पड़ रही थी। चीजें तो चीजें, रिश्ते भी बर्फ में जम गये थे। बाहर बर्फीली आंधी चल रही थी। मेरे मां–बाप, बीवी और बच्चे उस मौसम में मुझे बाहर नहीं जाने देना चाहते थे, लेकिन थोड़ी देर बाद मैंने सुना, मेरा घर मेरी जेब से लड़ रहा है। कह रहा है, "कुछ भी कर, कहीं से भी ला, पर चूल्हा जला।" इसलिए मुझे कटी जेब के साथ बाहर निकलना पड़ा।

पहले मैं अपने मालिक के पास गया, जिसकी चाकरी करता था। लेकिन वह ठंड के मारे अपने बिस्तर में अकड़ा पड़ा था। मैंने उसे अपनी कटी जेब दिखायी, मगर उसने जेब की तरफ देखा न मेरी तरफ।

फिर मैं अपने अफसर के पास गया, जिसके अधीन काम करता था। लेकिन उसके कान सुन्न थे। मेरी कटी जेब ने खुद आगे बढ़ कर उससे बात की, मगर उसने कुछ सुना ही नहीं।

तब मैं उस नेता के पास गया, जिसको हमेशा वोट देता आया था। लेकिन उसके हाथ–पैर जवाब दे चुके थे। उसने मुझे देखा, मेरी जेब की बात सुनी, मगर इतना ही बोला कि मौसम बदलने दो, फिर देखूंगा।

आखिरकार मैं उन दोस्तों के पास गया, जिन पर हमेश भरोसा करता आया था। लेकिन वे खुद अपने घरों के चूल्हे जलाने की किसी तरकीब की तलाश में न जाने कब से

बाहर घूम रहे थे कि ठंड के मारे उनके मूंह में बर्फ जम गयी थी। बोलने में असमर्थ वे मुझे और मेरी जेब को आंसूभरी आंखों से देखते ही रह गये।

इस तरह उस दिन चूल्हा जलाने की कोई तरकीब मुझे न मिली। रात हो गयी तो मैं मायूस होकर कटी हुई खाली जेब के साथ लौट पड़ा। उम्मीद थी कि चूल्हा भले न जले, बाहर की बर्फीली हवाओं से लड़ कर मेरे घर ने मेरे लिए थोड़ी-सी ऊष्मा जरूर बचा रखी होगी। लेकिन क्या देखता हूं कि घर के दरवाज़े, खिड़कियां और रोशनदान सब खुले पड़े हैं। बाहर की तमाम ठंडी हवाएं मजे में सीटियां बजाती हुई अंदर सपाटे भर रही हैं। हर चीज बर्फ बन गयी है। बाहर का मौसम अंदर पसरा पड़ा है। मेरे मां-बाप बीवी और बच्चों का कहीं अता-पता नहीं है।

गुस्सा तो मुझे ऐसा आया कि इस को आग लगा दूं, लेकिन मुझे गुस्से में देख मेरी कटी जेब व्यंग्यपूर्वक बोली, "जो एक छोटा-सा चूल्हा नहीं जला सकता, इतना बड़ा घर क्या जलायेगा?" सो मैं गुस्सा भी नहीं कर सका। दीन-हीन होकर खुद को ही कोसने लगा।

घर की सारी बेहूदगी को बरदाशत करते हुए मैंने दौड़-दौड़ कर सारे दरवाज़े बंद किये, खिड़कियां बंद्र कीं, रोशनदान बंद किये और अंदर अंधेरे में खड़ा उसके पिघलने का इंतजार करने लगा। लेकिन घर न पिघला। मैंने उसे बहुत समझाया। कहा, देख, तू घर है, घर की तरह रह। चुपचाप अपनी जगह खड़ा। शर्म से जमीन में गड़ा। मैं जाऊं तो जाने दे, आऊं तो आने दे। याद रख, तू मेरे लिए है, मैं तेरे लिए नहीं। और यह सोच कि तू है क्या, तेरा काम क्या है, फ़र्ज क्या है। सबसे पहले तो तू यह समझ ले कि तू घर है, मेरा बाप नहीं कि जो तू कहेगा, मैं मन मारके भी मान लूंगा। तू कौन होता है मेरी जेब से यह कहने वाला कि यह दिला दे, वह दिला दे? तू क्या मेरी मां है? बीवी है? बेटा-बेटी? नाते-रिश्ते वाला है? अफसर या मालिक है मेरा? अरे नालायक, तू मेरा मालिक नहीं, मैं तेरा मालिक हूं। मैं तेरे लिए नहीं, तू मेरे किए बना है। मुझे ऐश के साथ नहीं तो चैन के साथ रहने दे। मैं आऊं तो मेरे स्वागत में खुल जा। मैं बैठूं तो नरम-नरम गद्दे की तरह दब कर मुझे सह जा। मैं लेटूं तो आरामदेह बिस्तर की तरह बिछ जा। सर्दियों में गरम और गरमियों में ठंडा रह। धूप में तप मत, बरसात में टपक मत। मैं जो करूं, चुपचाप देख। मैं जो कहूं, चुपचाप सुन। यही तेरा काम है, यही तेरा कर्तव्य। चूल्हा जले न जले, मुझे क्या? भूखों मरेंगे तो मैं, मेरे मां-बाप और बीवी-बच्चे मरेंगे, तू तो नहीं।

यह क़हते ही मुझे अपने मां-बाप, बीवी और बच्चों का ध्यान आया और मैंने घर से पूछा, "कोई दिखायी नहीं देता, कहां हैं सब लोग?"

लेकिन घर कुछ न बोला।

मुझे ही कहना पड़ा, "ठीक है, मत बता, मैं खुद उन्हें तलाश कर लाता हूं। वे ही तुझे ठीक करेंगे।"

मगर ढीठ घर मुझे ठंडी-ठहरी आंखों से देखता रहा, जैसे कहता हो, "जहन्नुम में जाओ, मेरी बला से।"

उसका यह रवैया देख मुझे गश आने लगा। मुझे लगा, वो जमाने, जब घर घर हुआ करते थे। टूट-फूट कर जर्जर हो जाते थे, पर मजाल है कि मूंह से आह भी निकल

जाये। जैसे रखो वैसे रहते थे और इतना प्यार देते थे कि आप कहीं से आने पर संतोष की सांस लेकर कहते थे—"अपने घर से बेहतर जगह दुनिया में दूसरी नहीं।" बाहर जाते थे तो मोह-सा होता था—"हाय, अपना प्यारा घर छूट रहा है।" मगर यह ..

मैंने उसे फिर समझाने की कोशिश की, 'देख, इतना हृदयहीन मत बन। मानता हूं, मैं तेरे लायक नहीं। चल, तू बड़ा, मैं छोटा। तू सब कुछ है, मैं कुछ भी नहीं। तू मेरे बिना भी बना रहेगा, मैं तेरे बिना नहीं रहा सकता। लेकिन मेरे अच्छे घर, इतना तो सोच कि तुझे मैंने ही बनाया है। तेरे लिए मैंने खून जलाया है, पसीना बहाया है। आज मैं चूल्हा जला कर तुझे गरमाने की कोई तरकीब नहीं कर पा रहा हूं तो तू इतना बेमुरव्वत हो गया? लेकिन यह तो सोच कि इसमें मेरा क्या दोष है। तू देख तो रहा है कि मौसम कैसा है। कैसी हवाएं चल रही हैं। कैसी बर्फ गिर रही है। लेकिन जरा सब्र कर। यह मौसम हमेशा ऐसा ही नहीं रहेगा। कल नहीं तो परसों, धूप निकलेगी ही। चूल्हा भी किसी तरकीब से जलेगा ही। धीरज रख, मैं तुझे ऊष्मा और प्रकाश से भर दूंगा। तू समझता है, मुझे तुझसे प्यार नहीं है? है, प्यारे, बहुत है। अरे, मैं तो तुझे जान से भी ज्यादा प्यार करता हूं। नहीं तो क्या आज के इस बर्फीले अंधड़ में बाहर निकलता? सारे दिन कटी जेब के साथ मैं तेरे लिए ही तो भटका हूं। और तू है कि मुझसे बोलता भी नहीं, चुप खड़ा है। कम से कम इतना तो बता दे कि मेरे मां-बाप, मेरी बीवी और बच्चे कहां हैं?

इतनी मिन्नत-खुशामद के बाद वह जरा-सा खिला। बोला फिर भी नहीं, पर तहखाने की तरफ हल्का-सा इशारा कर दिया। लेकिन उसका यह हल्का-सा इशारा मेरे लिए तो जिंदगी बन गया। अपनी बदहवासी में तहखाने का मुझे खयाल ही नहीं आया था। मैं दौड़ कर तहखाने में गया और वहां जाकर क्या देखता हूं कि एक छोटा-सा दीपक जल रहा है और मेरे सब लोग एक कोने में एक-दूसरे से लिपटे-चिपटे बैठे हुए जीते-जागते मेरा इंतजार कर रहे हैं। मैं दौड़ कर उनसे लिपट गया और हम सबने रोते-हंसते बार-बार कहा, "लाख-लाख शुक्रिया इस घर का; इसमें यह तहखाना तो है।"

वह रात हमने तहखाने में ही काटी। अगले दिन बर्फ का अंधड़ थम गया और धूप निकल आयी। हम लोग तहखाने से बाहर आये। गीली-भीगी चीजें सुखायीं। घर को साफ-सूफ किया और इतना प्यार किया, इतना प्यार किया कि उसे सिर पर ही उठा लिया।

लेकिन चूल्हा अब भी नहीं जला था। मेरी कटी हुई जेब ज्यों की त्यों खाली, चुप और उदास थी। घर कल की तरह बिगड़ा हुआ नहीं लग रहा था, लेकिन मेरे प्रति वह अब भी ठंडा, खुश्क और रुखाई से भरा रवैया अपनाये हुए था।

अचानक मैंने देखा, वह इशारों ही इशारों में जेब से कुछ बात कर रहा है। चूल्हा जलाने की बात होगी, मैंने सोचा और उसकी कोई तरकीब खोजने बाहर चल दिया। मगर मैं चला तो घर भी मेरे साथ लग लिया। मैंने कहा कि तू मेरे साथ कहां जायेगा, तो बच्चों की तरह मचल गया, मैं भी चलूंगा—आं—आं—आं।

मैंने बहुत मना किया, समझाया, मनाया, बहलाया, डांटा-डपटा, एकाध हाथ भी रख दिया, पर नहीं माना। मेरा पल्ला पकड़ पांव पटक-पटक कर रोने लगा। कटी जेब उसकी सिफारिश करते हुए मुझसे बोली, "अगर यह चलना ही चाहता है तो ले चलो न, क्या हर्ज है?"

हर्ज कैसे नहीं है ?" मने कहा, "घर और बाजार में फर्क होता है। बाजार में जाकर अगर यह तुझसे कहने लगे कि यह दिला दे, वह दिला दे, तब तू क्या करेगी ? कर्ज लेगी ? पर याद रख, कर्ज की लत एक बार लगी तो लगी। कर्ज ऐसा नशा है कि सारे नशे उसके सामने हेच। कर्ज के चक्कर में फंस कर मैंने कई घर बरबाद होते देखे हैं।

मगर जेब का घर से न जाने क्या समझौता हो चुका था कि वह उसी का पक्ष लेती रही। हार कर मैंने घर उंगली की पकड़ी और उसे साथ लेकर चल दिया।

बाहर मौसम बदल चुका था। बर्फ पिघल रही थी। रिश्तों में भी गरमाहट आ गयी थी। मेरे दोस्त मुझे चहकते हुए मिले। मैंने अपने घर से उनका परिचय कराया तो वड़े खुश हुए। कहने लगे, "यह तो बड़ा सुंदर है। इसमें तो हम लोगों की दावत होनी चाहिए।"

"दावत जरूर होगी दोस्तो।" मैंने कहा, "लेकिन कोई तरकीब बताओ कि मेरे घर का चूल्हा जल जाये।"

"वह तरकीब तो अपनी जेब से पूछो।" दोस्तों ने कहा और मेरी कटी जेब की तरफ देख कर हंस दिये।

जेब को यह बात बुरी लगी। बिगड़ कर मुझसे बोली, "क्यों मेरा अपमान कराते हो किसी ऐसे के पास चलो, जो कुछ कर सकता हो।"

मैं अपने नेता के पास गया। उसके हाथ-पैर खूब चल रहे थे। पिछली रात ही वह विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से अपनी सरकार को अरबों के कर्ज दिलाने में सफल हुआ था और वड़ा खुश नजर आ रहा था। उसने अरबों के कर्ज की बात बतायी तो मैंने कहा, "उसमें से कुछ मुझे दे दो ताकि मैं अपने घर का चूल्हा जला सकूं।"

"बेवकूफ हो ?" नेता ने कहा, "वे कर्ज़े क्या घरों के चूल्हे जलाने के लिए लिये गये हैं ? उनसे तो कंप्यूटर, रंगीन टी० वी०, विदेशी शराबें, सिगरेटें, लिपस्टिकें और हथियार खरीदे जायेंगे।" फिर उसने मेरे घर की तरफ देखते हुए कहा, तुम्हारा घर है ? बड़ा सुंदर है। मगर इसके रहते तुम अपना चूल्हा जलाने की फिक्र में क्यों परेशान हो ? इसको बेच दो या किराये पर उठा दो और ठाट से अपना चूल्हा जलाओ। मुझे ही दे दो, मैं इसमें अपना चुनाव-कार्यालय खोल लूंगा।"

"फिर मैं कहां रहूंगा ?" मैंने नेता के प्रस्ताव पर नापसंदगी जाहिर करते हुए कहा।

"तो ऐसा करो, इसे गिरवी रख कर कर्ज ले लो।" नेता हंस कर बोला, "अरे, हम इतना बड़ा देश गिरवी रख सकते हैं, तुम एक छोटा सा घर गिरवी नहीं रख सकते ?"

मैंने कुछ बहाने बनाये और अपने घर को लेकर वहां से भागा।

फिर मैं अपने अफसर के पास पहुंचा। उसके कान बिल्कुल ठीक काम कर रहे थे। मेरे घर पर नजरें गड़ाये-गड़ाये उसने मेरी बात बड़े ध्यान से सुनी, लेकिन आखिर में कहा, "चूल्हा जलाने की तरकीब तो मालिक ही बता सकते हैं।"

मैं मालिक के पास पहुंचा. वह बिस्तर में अकड़ा हुआ नहीं, खुश-खुश अपनी कुरसी पर बैठा हुआ मिला। उसने मेरी बात सुनी, मेरे घर को देखा और मेरी जेब से कहा, "तुम खाली क्यों हो बहनजी ? इस घर पर तो तुम जितना चाहो कर्ज मुझसे ले सकती हो। ठाठ से चूल्हा जलाओ, पकवान पकाओ और इस घर का गरमाओ।"

अब जेब तो जेब ठहरी। पेट का—सा स्वभाव है उसका। खाली होगी तो किसी भी तरह भरना मांगेगी। मैं मना करता रह गया, लेकिन वह मालिक की बातों में आ

गयी और कर्ज ले आयी। मैं बड़ा उदास होकर लौटा, क्योंकि कर्ज की अदायगी के बारे में मालिक की शर्तें बड़ी कठोर थीं। मुझे अपना भविष्य साफ नज़र आ रहा था कि इस कर्ज को चुकाने के लिए मुझे शायद किसी दिन इस घर को बेचना ही पड़ेगा। लेकिन ये दोनों बेवकूफ, जेब और घर, बहुत खुश थे। लौटते समय जेब मेरे आगे-आगे चल रही थी, घर मेरी उंगली छोड़ उछलता कूदता उसके पीछे पीछे, और मैं लुटा लुटा सा उन दोनों के पीछे।

नन्हें भविष्य के लिए

गिरिजा कुमार माथुर

बच्चा
सूरज से पहले जाग जाता है
नन्हीं मुट्ठियों में
बंद किए आसमान
तेज़-तेज़
हाथ-पांव चलाता है
आते नए वक्त को
जल्दी बुलाता है —

— घर भर में
दिन सा निकल आया है;
मन में अचानक
धूप भर गई है
ठहरी हुई दुनियां को
गति मिल गई है

— बच्चा
किलकारी भरता है
ओंठ-कोरें
मुस्काता है
हल्की तैरती आवाज़ से
खिलखिलाता है
तमाम पेड़-पौधों पर, ढेर-ढेर
कलियां चटकी हैं
फूल उड़ रहे हैं
छोटी श्यामा चिड़िया
मीठे स्वर
हवा में घोल गई है
समय की कड़वाहट कुछ कम हो गई है —

— बच्चा घुटनों चल निकला है
रुकता ही नहीं गोद में
कमरे-कमरे फिरता है
ठहरता है, बैठता
मुड़, पीछे देखता
फिर आगे बढ़ता है
सब कुछ छूता है
टटोलता है, चखता है
मना करो
तो बिखरता है
— अपनी तरह
हर सत्य तक
वह पहुंचना चाहता है
मुझ से बेहतर
एक दुनियां शायद
रचना चाहता है —
— बच्चा
गुमसुम है, निढाल है
कह तो कुछ सकता नहीं
बुझी हुई आंखों से सिर्फ देखता है
बीमार है

अब यह सारी दुनियां
उदास है
उजाड़ है —
— बच्चे ने पहला शब्द बोला है
नई जलतरंग पर
पूरी सृष्टि को निचोड़ती
पहली गूंज निथर आई है
चीड़ और देवदारू के
अछूते जंगलों से
सुबह की हवा आई है
सांसों से पीकर
रख लेने का
जिसे तन करता है
सारी ध्वनियों को यह शब्द
धोकर ले आया है
कोई एक नया अर्थ
फिर भाषा में आया है। ⊙

लेख

केदारनाथ अग्रवाल

○ डॉ० रणजीत

हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में केदार अपने प्रकृति-प्रेम और अपनी आंचलिक कविताओं के कारण अलग से भी याद किये जाते रहेंगे। केदार ने अपने कवि जीवन का प्रारंभ प्रेम और शृंगार के रूमानी कवि के रूप में किया था और बीच के संघर्षी स्वर के बाद, परवर्ती कविताओं में फिर उनका मानवीय और प्राकृतिक सौंदर्य और प्रेम के कवि का रूप ही अधिक मुखर हुआ है।

"नींद के बादल" (४७) उनकी प्रारंभिक कविताओं का संकलन है। संकलन की पांच पंक्तियों की भूमिका में कवि ने कहा है कि ये उसकी प्रारंभिक वैयक्तिक प्रेम की कविताएं है, नींद के ऐसे बादल, जो लाल सवेरे के साथ ही ओझल हो गये। "नींद के बादल" की अधिकांश कविताएं सरल और स्वस्थ प्रेम की सरल और स्वस्थ कविताएं हैं। नारी सौन्दर्य और प्रेम की स्वस्थ और कुंठा रहित अभिव्यक्ति इनमें हुई है। सभी कविताओं में छायावादी प्रभाव स्पष्ट है- पर फिर भी कवि की शैली की अपनी सरलता और सादगी उसे छायावादी वागाडम्बर से बहुत दूर ले जाती है। इन प्रेम-कविताओं के अतिरिक्त संकलन में कुछ प्रकृति संबंधी, छायावादी भावभूमि की कविताएं हैं। दो-तीन कविताओं में रहस्यवाद का स्वर भी है। एक कविता-अवसान-कवि की यथार्थवादी मनोवृत्ति की ओर भी संकेत करती है।

केदार का वास्तविक व्यक्तित्व "युग की गंगा" (४७) मे उभरता है। संकलन की सभी कविताएं प्रगतिशील भावभूमि की कविताएं हैं। युग की गंगा की कविताओं को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: प्रकृति-संबंधी कविताएं, यथार्थवादी रेखाचित्र, समूहगान और छोटी कविताएं।

प्रकृति-संबंधी कविताओं में दो महत्वपूर्ण हैं: "चन्द्रगहना से लौटती बेर" और 'बसन्ती हवा'। दोनों सुन्दर कविताएं हैं। दोनों में प्रकृति का स्वच्छ, अकुंठ और स्वच्छंदतावादी तत्वों से पूर्ण 'किसानी' चित्रण है। किसान-जीवन से कवि का तादात्म्य इतना गहरा है कि उसे वास्तव में किसान-जीवन का कवि कहा जा सकता है। केदार की प्रकृति संबंधी कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता ही यही है कि उनमें प्रकृति को किसी मध्य-मवर्गीय रुग्ण और कुंठाग्रस्त दृष्टि से नहीं, एक किसान की स्वस्थ, सरल, ग्राम्य और रूमानी दृष्टि में देखा गया हैं। 'चन्द्रगहना से लौटती बेर' का यह चित्र इसका प्रमाण है:

१– देखिए संकलन की 'नभ की ओर निहार रहा था', 'अभि रूपसि अनजान' और 'वह मौन कहां रहता है' शीर्षक कविताएं।

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना
बांधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का
सज कर खड़ा है।
पास ही मिलकर उगी है
बीच में अलसी हठीली
देह की पतली, कमर की है नचीली
नीले फूले फूल को सिर पर चढ़ा कर
कह रही है, जो छुए यह
दूं हृदय का दान उसको
और सरसों की न पूछो
हो गयी सबसे सयानी
हाथ पीले कर लिये हैं
ब्याह मडप में पधारी
फाग गाता मास फागुन
आ गया है आज जैसे
देखता हूं मैं; स्वयंबर हो रहा है

'बसन्ती हवा' केदार की श्रेष्ठ कविताओं में से एक है। ग्राम्य जीवन की सरलता, स्वस्थता और उन्मुक्तता के साथ ही साथ जीवन के प्रति एक स्वस्थ और आशावादी दृष्टि की छाप इस कविता पर स्पष्ट है। 'पंचक पर्व' पर आधारित अतुकांत छन्द में लिखी हुई इस कविता का प्रभाव छन्द के प्रवाह के कारण बहुत बढ़ गया है १। एक अजीब मस्ती और जीवन का संगीत इस कविता में है २।

हवा हूं हवा मैं
बसन्ती हवा हूं
वही हां, वही जो
युगों से गगन को
बिना कष्ट श्रम के
संभाले हुए हूं
वही हां, वही जो
सभी प्राणियों को
पिला प्रेम-आसव
जिलाए हुए हूं
अनोखी हवा हूं
बड़ी बावली हूं
बडी मस्त मौला
नहीं कुछ फिकर है
बड़ा ही निडर हूं
जिधर चाहती हूं
उधर झूमती हूं
मुसाफ़िर अजब हूं।

'युग की गंगा' की अधिकांश रचनाएं यथार्थवादी रेखाचित्र हैं। चित्रकूट के यात्री, बुँदेलखंड के आदमी, शहर के छोकरे, मूलगंज, मजदूर, चंदू, चेतू, रनियां आदि कविताएं वास्तव में कविताएं कम और रेखाचित्र अधिक हैं। इनमें काव्यात्मक 'सीचुएशन' नहीं, सरल रेखाकंन मात्र है। हां कहीं कहीं व्यंग्यात्मकता का पुट उन्हें मनोरंजक जरूर बना देता है। चित्र कूट के बौड़म यात्रियों का यह चित्र ऐसा ही है;

चित्रकूट के बौड़म यात्री
सेतुआ, गुड़ गठरी में बांधे
गठरी को लाठी पर साधे
बंडी काली, तेल ही काली
धोती ओछी, गंदी पहने
गंदे जीवन के अधिकारी
स्वर्ग पहुंचने की इच्छा में
लम्बे लम्बे कदमें धरते
जल्दी जल्दी सासें भरते
नंगे पैरों पैदल चलते

इन रेखा चित्रों में कवि का, अपने अंचल के जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण प्रकट हुआ है। इन चित्रों और बुन्देलखंड की प्रकृति का भावभीना वर्णन करने वाली कवि की कई प्रकृति-संबंधी कविताओं को देखते हुए उसे बुन्देलखंड के ग्राम्य जीवन का आंचलिक कवि कहा जा

१— देखिए, कैलाश वाजपेयी; आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, पृ २५१
२— देखिए, रामेश्वर शर्मा, कवि केदारनाथ अग्रवाल, राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, पृ० ९४

सकता है। किसान जीवन कवि का प्रधान विषय है। एक किसान का जीवन के प्रति पौरुषशील दृष्टिकोण उसकी कई कविताओं में व्यक्त हुआ है :

जीवन नहीं मोम बत्ती है
जले और रोये, पिघले जो
खोये अन्त समय में।
जीवन तप्त प्रकाश सूर्य है
जो गहरे सागर में उभरे
लाल अग्नि सा पहले दहके
जड़ चेतन सम्पूर्ण प्रकृति के
रोम रोम में ज्वाल उगल दे
—मोमबत्ती और सूरज,
युग की गंगा

लेकिन किसान-जीवन का कवि होते हुए भी केदार ने किसान-जीवन के व यथार्थ का आदर्शीकरण या गौरवान्वयन नहीं किया है—उस जीवन के अभिशापों को उन्होंने कभी नज़र-अन्दाज़ नहीं किया है। 'युग की गंगा' की 'गांव में' शीर्षक कविता इस बात का प्रमाण है:—

उसी पुरातन चक्की का कर्कश मोटा स्वर
अंधकार के आर्तनाद सा सुन पड़ता है
गाय, बैल, भेड़ों, बकरी, पशुओं के दल में
मूर्ख मनुष्यों का समाज खोया रहता है
सड़े घूर की, गोबर की बदबू से दब कर
महक ज़िन्दगी के गुलाब की मर जाती है
रार, क्रोध, तकरार, द्वेष से, दु:ख से कातर
आज ग्राम की दुर्बल धरती घबराती है।

रेखाचित्रों के कुछ गुण लिये हुए, जीवन के अनुभव-खंडों को चित्रित करने वाली कई छोटी छोटी कविताएं भी इस संकलन में संकलित हैं। इनमें कई का कसाव और संक्षिप्ति प्रभावक है। ऐसी कविताओं में गर्रानाला, धन-जन, दो जीवन, कोयले, वरदान आदि का नाम लिया जा सकता है। 'वरदान' में कवि कहता है ;

वैभव की विशाल छत्र-छाया में
स्वर्ण सिंहासन पर
रक्खी देख मंदिरों में पत्थर की मूर्तियां...
क्षुब्ध हो गर्भवती
ईश्वर से मांगती है वरदान
केवल पाषाण हो
कोख की मेरी भी सन्तान।

समूह-गीत प्रगतिशील कविता का एक महत्वपूर्ण अंग है। युग की गंगा के समूह गीतों में दो महत्वपूर्ण और सशक्त हैं ; 'करोड़ों का गाना' और 'कटुई का गीत'। करोड़ों का गाना में करोड़ों भारतीयों को एक सूत्र में पिरो दिया गया है:—

सभी का तन गुलाम है, सभी का मन गुलाम है
सभी की मति गुलाम है, सभी की गति गुलाम है
गुलामियों के चिन्ह को मिटाए चल, मिटाए चल, मिटाए चल
हरेक तार सांस का बजाए चल, बजाए चल, बजाए चल।

'कटुई के गीत' में सुन्दर ढंग से कवि ने अपने जीवनदर्शन को व्यक्त कर दिया हैं :

काटो काटो काटो करबी
साइत और कुसाइत क्या है ?
जीवन से बढ़ साइत क्या है ?

मारो मारो मारो हंसियां
हिंसा और अहिंसा क्या है ?
जीवन से बढ़ हिंसा क्या है ?

'लोक और अलोक' [५७] केदार का तीसरा संकलन है। संकलन की अधिकांश कविताओं में प्रगतिशील दृष्टिकोण की सपाट अभिव्यक्ति और प्रगतिशील विचारधारा का सीधा कथन मात्र है १, लेकिन कुछ कविताएं इस साधारणता के स्तर से ऊपर उठी हैं। ऐसी कविताओं में लेखकों से, वह जन मारे नहीं मरेगा, माझी न बजाओ वंशी, टूटे न तार तने जीवन सितार के, केन किनारे और नागार्जुन के बांदा आने पर आदि का नाम लिया जा सकता है। इनमें से भी अधिकांश का कथन शैली के सहज प्रवाह ने इन्हें सुन्दर कविताएं बना दिया है। 'लेखकों से' की ये पंक्तियां इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं :

सूर्य हो लेकिन छिपे हो बादलों में
क्रान्ति हो लेकिन पले हो पायलों में
सिंधु हो लेकिन नहीं तूफान लाते
चांद की मुस्कान में हो प्रान पाते।

'वह जन मारे नहीं मरेगा' में जनता की अजेय शक्ति में कवि की दृढ़ आस्था व्यक्त हुई है;

जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा हुआ है
तूफानों से लड़ा
और फिर खड़ा हुआ है
जिसमें सोने को खोदा
लोहे को मोड़ा
जो रवि के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा !
जो जीवन की आग जला कर आग बना है
फौलादी पंजे फैलाए नाग बना है
जिसने शोषण को तोड़ा
शासन मोड़ा है
जो युग के रथ का घोड़ा है
वह जन मारे नहीं मरेगा —
नहीं मरेगा !

'लोक और अलोक' में कवि ने गीतों की एक नयी दिशा में कुछ सुन्दर और सफल प्रयोग किये हैं। यह दिशा है लोक गीतों की दिशा। संकलन में लोकगीतों की धुनों, शब्दावली और भावभूमि को छूती हुई शैली के गीत हैं। 'मांझी न बजाओ वंशी' ऐसे गीतों में सर्वश्रेष्ठ है;

१— जैसे श्रम 'शीर्षक यह कविता :—

खो सकता है
तेरा मेरा रत्ती रत्ती जोड़ा सोना
हो सकता है पूर्ण असंभव का भी
पूरा संभव होना

किन्तु नहीं श्रम
तेरा-मेरा, इन हाथों का खो सकता है
इनके द्वारा कर्म असंभव
पूरा संभव हो सकता है।

मांझी न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता जैसे जल डोलता
मन जल का जहाज जैसे पल पल डोलता !
मांझी न बजाओ बंशी मेरा प्रण टूटता
मेरा प्रण टूटता जैसे तृण टूटता
तृण का निवा ा जैसे बन बन टूटता !

लोक जीवन के सीधे सरल उपमानों ने ऐसे गीतों में एक ऐसा रस भर दिया है, जिसे 'लोकरस' कहा जा सकता है ।

'युग की गंगा' की लघु कविताओं की परम्परा 'लोक और अलोक' में भी विद्यमान है । ऐसी कविताओं में मात्र एक बिम्ब, या अनुभव खंड को संक्षेप में व्यक्त किया गया है । ऐसी कविताएं कई बार तो अपने इकलौते बिम्ब की सुन्दरता या विशेषता के कारण या सूक्ति रूप में पूरी बात कह देने के कारण प्रभावक होती हैं पर अधिकांश 'कविताओं' की जगह 'कविता खंड' मात्र बन कर रह जाती हैं ।

'केन किनारे' 'बसंती हवा' की परंपरा की अगली कड़ी है । लेकिन यहां केन की प्राकृतिक सुषमा के साथ ही साथ जनवादी विचारों को भी गूंथा गया है ;

रोक सका है कौन प्रवाहित युग का पानी
आदि काल से काट रहा है तट चट्टानी...
भूरागढ़ का किला सुनाता है यह गाथा
ऊंचे सूरज से ऊंचा है जन का माथा

'नागार्जुन के बांदा जाने पर' बांदा नगर के सुन्दर आंचलिक ढंग के वर्णन और कविता के प्रति कवि के राग की अभिव्यक्ति के कारण, बीच बीच में कुछ साधारण पंक्तियों की भरावट के बावजूद, एक सुन्दर कविता बन गयी है । नागार्जुन ने भी अपने इस बांदा-निवास पर एक सुन्दर कविता लिखी है । दो प्रगतिशील कवियों की एक दूसरे के सान्निध्य पर लिखी हुई ये दोनों कविताएं प्रगतिशील कविता के इतिहास में याद रक्खी जाएंगी । कविता सुनते हुए उस के साथ तादात्म्य की, 'रसदशा' की, स्थिति का सुन्दर वर्णन इस कविता की विशेषता है :

एक बार फिर मिला सुअवसर मधु पीने का
कविता का झरना बन कर झर झर जीने का
एक साथ दिल की धड़कन में ध्वनि करने का
ऐसा लगा कि जैसे हम सब एक प्राण हैं, एक देह हैं
एक गीत हैं, एक गूंज हैं ।

बांदा की और नागार्जुन के सन्दर्भ में मिथिला की धरती की मीठी सौंधी गध इस कविता की एक एक पंक्ति में रमी हुई है ।

फूल नहीं रंग बोलते हैं (६५) केदार जी का ऐसा संकलन है, जिस में उनके पिछले तीनों संकलनों की महत्वपूर्ण कविताओं के अतिरिक्त उनकी परवर्ती कविताएं संकलित हैं । संकलन चार शीर्षकों में विभाजित है : वल्लरी तुम धूप तुम हवा तुम, अस्थि के अंकुर, रंग बोलते हैं, और कुछ लिखी-अधलिखी कविताएं । पहले दो शीर्षकों में कुछ कविताएं तो पिछले संकलनों से चुनी हुई हैं, और शेष नयी । दूसरे दोनों शीर्षकों में लगभग सब ५७ के बाद की ही कविताएं हैं । संख्या की दृष्टि से केदार जी की परवर्ती कविताओं में

प्रकृति संबंधी 'लघु कविताओं' की ही अधिकता है। काल-क्रम में देखा जाय तो यह तथ्य सामने आता है कि एक तो परवर्ती कविताओं में केदार का वह संघर्षी स्वर धीमा पड़ गया है, जो 'युग की गंगा' और 'लोक और आलोक' का मूल स्वर है, उनका प्रकृति-प्रेमी रूप ही अधिक मुखर होकर सामने आता है और दूसरे लघु कविताओं की अपनी प्रवृत्ति को इन्होंने इतना खींचा-ताना है कि वह कई जगह अपना अर्थ ही खो बैठी हैं। अधिकतर जगह उन्होंने दो दो चार पंक्तियों की बहुत साधारण सी बात को कविता के नाम से चलाया है। कुछ लिखी अधलिखी कविताएं', खंड की कविताओं को तो खैर स्वयं उन्होंने लिखी 'अधलिखी माना है, पर शेष परवर्ती कविताओ में से भी अधिकांश या तो अधलिखी हैं, और या अर्ध कविताएं हैं। कुछ में केवल एक बिम्ब या एक उपमा है[1], कुछ में ऐसी 'काव्यात्मक स्थिति' है, जिसका उपयोग कविता के रूप में किया जा सकता था[2] और कुछ में कोई साधारण सी बात ऐसे साधारण ढंग से कह दी गयी है कि उन्हें कविता कहा जाए तो किसी भी आदमी की किसी भी बात को कविता मानना होगा[3]। अधिकांश 'कविताएं' इसी तरह की हैं, जिनमें केदार भी अज्ञेय जी के एक शगूफे हाइकू कविता' के कवि लगने लगते हैं।

फिर भी संकलन में कुछ सुन्दर परवर्ती कविताएं हैं जिनसे मालूम होता है कि कवि की संवेदना में सूक्षमता और अभिव्यक्ति में परिष्कार आया है। इनमें एक खिले फूल ने, चील दबाए हैं पंजों में, हरी घास का बल्लम, हम न रहेंगे, हम जिए न जिएं दोस्त, और जैसे कोई सितारिया के नाम लिए जा सकते हैं। पहली तीनों प्रकृति संबंधी लघु कविताएं हैं। 'एक खिले फूल ने' में प्रकृति के कवि-मन पर गहरे प्रभाव को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है:

झाड़ी के एक खिले फूल ने
नीली पंखुरियों के एक खिले फूल ने
आज मुझे काट लिया
ओठ से
और मैं अचेत रहा
धूप में,

'हरी घास का बल्लम' प्रकृति के कुंठानाशी रूप का उद्घाटन करती है:

हरी घास का बल्लम
गड़ा भूमि पर
सजग खड़ा है
छह अंगुल से नहीं बड़ा है
मन होता है:
मैं उखाड़ कर इसे मार दूं
कुंठा को गढ़ में पछाड़ दूं
जहां गड़े हैं भूले मुरदे
वहां गाड़ दूं!

'चील दबाए है। पंजों में। मेरे दिल को। हरी घास पर। खुली हवा में। जिसे धूप में! मैंने रक्खा।' कवि की संवेदना के विस्तार को द्योतित करती है कि चील की शिकार किसी

---

१. एक पूरी कविता है:
मैं पहाड़ हूं, और तुम
मेरी गोद में बह रही नदी हो।
और दूसरी: उड़ जाता है वेतन
जैसे गंध कपूर।

२. तुम मिलती हो
हरे पेड़ को जैसे मिलती धूप
आंचल खोले
सहज
स्वरूप।

३. जैसे: अतीत की सन्तान है वर्तमान
भविष्य का पिता है वर्तमान।

मासूम चिड़िया के साथ उसके हृदय में कितनी सहानुभूति है ।

'हम न रहेंगे', 'हम जिएं न जिए' और 'जैसे कोई सितारिया' में कवि की गहरी जीवन-आस्था और संसार के प्रति उसका गहरा मानवीय राग व्यक्त हुआ है । उसे विश्वास है कि चाहे वह रहे या नहीं रहे, जीवन और प्रकृति की सुन्दरताएं बनी रहेंगी, खेत रहेंगे, माटी को मदमस्त बनाते श्याम बदरिया के लहराते केश रहेंगे, प्रकृति और संसार के रति-रंग रहेंगे और भूतल को रस सिक्त बनाने वाले लाल चुनरिया में लहराते अंग रहेंगे । 'हम जिएं न जिए' में अपनी अनुज पीढ़ी के प्रति कितना स्वस्थ आस्थापूर्ण और मानवीय भाव व्यक्त हुआ है :

हम जियें न जियें दोस्त
तुम जियो एक नौजवान की तरह
खेत में झूम रहे धान की तरह
मौत को मार रहे बान की तरह
हम जियें न जियें दोस्त
तुम जियो अजेय इन्सान की तरह

पर कवि का यह राग तरुणों के प्रति ही नहीं, सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति ही नहीं, प्रकृति के प्रति ही नहीं, पूरे संसार के प्रति है । वह त्रिलोचन की तरह पूरे "जगत-जीवन" का प्रेमी है । और अपने इस संसार—प्रेम को उसने ऐसे ऊंचे भावत्मक स्तर तक पहुंचाया है कि भक्तों का सायुज्य और योगियों की समाधि भी पीछे रह गयी :

जैसे कोई सितारिया द्रुत में सितार को बजाये
लय में पहुंच कर वह स्वयं लय हो जाये
और वह संगीत—झंकृत संगीत
तात्विक संगीत हो जाए
केवल आनन्द ही आनन्द लहरे और लहराये
केवल शरीर ही उसका सितार से टिका रह जाये ।
ओ मेरे संसार
मैं यही तुमसे पाऊं
जब तक मैं जियू तुम्हें बजाऊं

आग का आईना (७०) कवि की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर प्रकाशित संकलन है । संकलन की भूमिका में केदार लिखते हैं : "इसकी कविताऐं मेरी पुरानी कविताओं से बिल्कुल भिन्न हैं । दोनों के बीच की दूरी मेरे पहले के केदार और अब के केदार के बीच की दूरी है । अलावा इसके कथ्य में जान पड़ी है इस पकड़ से । शिल्प यथानुरूप कलात्मक बना है, ऐसी पकड़ से ।" स्पष्ट है कि कवि अपने विकसित शिल्प-बोध के प्रति सजग है । इस क्षेत्र में उसने कुछ नया उपलब्ध किया है, ऐसा भाव भूमिका में स्पष्ट है ।

पर जो लोग उनका 'फूल नहीं, रंग बोलते हैं' संकलन पढ़ चुके हैं, उन्हें 'आग का आईना' की कविताएं उससे "बिल्कुल भिन्न" की बात छोड़िये, "बहुत भिन्न" भी नहीं लगेंगी । स्पष्ट है कि "पुरानी कविताओं" से उनका मतलब लोक और आलोक तक की कविताओं से ही है और उनसे ये और फूल नहीं, रंग बोलते हैं की नयी कवितायें निश्चय ही भिन्न स्वर की हैं । इसमें संदेह नहीं कि केदार का काव्य-बोध और शिल्प-कौशल इस संकलन में और अधिक विकसित हुआ है । उनकी भाषा में एक नया परिष्कार,

एक नयी भंगिमा आयी है, पर इसका यह मतलब नहीं कि कवि का मूलभूत प्रगतिशील और आस्थावादी स्वर इस संकलन में अश्रव्य हो गया हो। वह स्पष्ट और मुखर हैं।

आग का आईना की महत्वपूर्ण कविताओं में "कहां नहीं पड़ती है," "मन की गठरी में बंधा नगर," "मैं उसे खोजता हूं", "श्रीखंडे के प्रति", "दूर कटा कवि मैं जनता का", "मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद", "यह जो हुआ है उत्तरी वियतनाम में" "पत्थर घिस गया कगार का", और "आग का आईना है नाराज पेरिस" उल्लेखनीय हैं।

"कहां नहीं पड़ती हैं समय की मार" कविता में प्रारंभिक सरल-निर्मल आशा-आस्था की जगह एक निर्मम यथार्थ की उदास और खिन्न पृष्ठ भूमि पर एक चिन्ताग्रस्त आशावाद और एक संश्लिष्ट आस्था के दर्शन होते हैं। कविता का प्रारंभ यथार्थ की कटुता की काफी पराजित सी स्वीकृति के साथ होता है :

कहां नहीं पड़ती है किस पर
काल के मौन पंखों की मार ?
पृथ्वी हो जाया करती हैं अचेत
पहाड़ से खड़े-खड़े बड़े-बड़े से उसके हाड़
नत हो जाया करते हैं अवसन्न त्वचाहीन

लेकिन इन सारी क्रूर वास्तविकता के बावजूद एक "फिर भी" यहां मौजूद है :

फिर भी सागर, पृथ्वी, नदियाँ आकाश और आम
मार पर मार के बाद भी समाप्त नहीं हुए
और अब भी लहराता है सागर भरपूर जवान
अब भी फूल फल से भरी रहती हैं पथ्वी छविमान
अब भी नये-नये चांद और सूरज उगाया करता है आकाश

शैल्पिक सौष्ठव की दृष्टि से कविता को यहीं या एकाध और कसी हुई पंक्ति के बाद समाप्त हो जाना चाहिए था, पर कवि अपने पुराने "बात को उसके पूरे निष्कर्ष तक पहुंचाने" के प्रगतिवादी आग्रह के कारण उसे खींचता है और परिणामस्वरूप दो बिल्कुल साधारण अकाव्यात्मक पंक्तियों के साथ कविता समाप्त होती है—

युग की, सत्य की टोह के लिए
विचार को दिशा देने के लिए।

"मन की गठरी में बंधा" में बांदा नगर में हुए तरुणों के किसी प्रदर्शन को उसकी पूरी तेजस्विता में कवि ने अंकित किया हैं :

मन की गठरी में बंधा नगर का नैतिक बल
खुल गया है अब
सामूहिक प्रदर्शन के रूप में...
पिछड़े प्रदेश का गुमसुम इतिहास
मनहित युवकों के साथ
सड़क पर कड़क कर
आक्रोश और आग के डग धरता
अनाचार और अत्याचार की पीठ कुचलने लगा है।

"मैं उसे खोजता हूं" कवि की बिम्बधर्मा लघु कविताओं की परंपरा की ही अगली सशक्त कड़ी हैं :

मैं उसे खोजता हूँ
जो आदमी है
और अब भी आदमी है
तबाह होकर भी आदमी है
चरित्र पर खड़ा
देवदार की तरह बड़ा ।

यहां अन्तिम पंक्ति ही वास्तव में कविता की जान है, पर उस तक एक क्रमिक चढ़ाव पूरी कविता में व्याप्त है । मायकोव्स्की के रूपक का प्रयोग करें तो पंक्ति-दर-पंक्ति पलीते की सुलगन तेज़ी से आगे बढ़ती जाती है और अन्तिम पंक्ति में विस्फोट हो जाता है ।

"मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद" में जीवितावस्था में उनकी उपेक्षा करने वाले पर मौत के बाद प्रशंसाओं के पुल बांधने वाले साहित्यकारों के फरेब पर अच्छा व्यंग्य किया गया है और "श्रीखंड़े के प्रति" में मूर्तिकार श्रीखंड़े द्वारा तराशे हुए एक फलक के आधार पर एक अच्छा मज़मून बांधा गया है । पर इन कविता का अन्त भी मुझे अकलात्मक ही नहीं, एक हद तक भोंडा भी, लगता है । अच्छी-खासी कविता को "जय श्रीखंडे" के नारे से समाप्त करके पाठकों की सुरुचि पर आघात किया गया है ।

"दूर कटा कवि मैं जनता का" कवि की अपने बारे में, अपनी प्रतिश्रुति के बारे में "आस्था का शिलालेख" की परंपरा की कविता है :

दूर कटा कवि मैं जनता का
कच कच करता
कचर रहा हूं अपनी माटी
मिट मिट कर मैं सीख रहा हूँ
गति पल जीने की परिपाटी
कानूनी करतब से मारा
जितना जीता उतना हारा
न्याय-नेह सब समय खा गया
भीतर-बाहर धुंआ छा गया
लेकिन इन सब स्थितियों के बावजूद :—
लिये हृदय में कविता-थाती
मैं ताने हूं अपनी छाती

"यह जो हुआ हैं उत्तरी वियतनाम में" और "आग का आईना है नाराज पेरिस" समसामयिक इतिहास की दो महत्वपूर्ण घटनाओं, वियतनामी जनता के दुर्धर्ष संघर्ष और फ्रांस में दगालशाही के विरुद्ध छात्र-विद्रोह से प्रेरित होकर लिखी गई हैं ।

"पत्थर घिस गया कगार का" कलात्मक दृष्टि से इस संकलन की सर्व-श्रेष्ठ कविता कही जा सकती है । सूक्ष्म अर्थ-छायाओं और व्यंजनाओं से पूर्ण, सधे हुए बिम्बों के सहारे यह कविता धीरे-धीरे आगे बढ़ती है :

पत्थर घिस गया कगार का
नदी
अब भी जवान है ।
अकेला पहाड़

शताब्दियों का बोझ उठाये खड़ा हैं ।
सिर के पेड़ तालियां बजाते हैं
जमीन का जमाना नहीं बदला ।

और अधिकाधिक विद्रूप और बेहूदे होते जा रहे आज के यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति देती हैं :

आग
जल रही हैं किताबों में
लपालप ।
कागज नहीं जलता ।
हाथ में उठाये किताब सूरज की
आदमी अंधेरे में बैठा हैं ।

किताबी क्रान्ति पर कितनी सटीक टिप्पणी हैं । "कागज नहीं जलता" में गजब की विडम्बना हैं । अन्त तक पहुंचते-पहुंचते यह कविता "भेड़िये की तरह भयंकर" हो उ आज के यथार्थ को एक मार्मिक बिम्ब के माध्यम से रूपायित कर समाप्त हो जाती है :

बकरे बोलते हैं
चाकुओं की सदारत में
सलाम ठोकते ।

चाकुओं की सदारत में बकरों का बोलना कितना संत्रासपूर्ण है ।

केदार हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं । अ अंचल बुन्देलखंड की प्रकृति और लोक जीवन उनकी कविता के मुख्य विषय हैं । अप विषय वस्तु के अनुकूल ही उन्होंने साधारण बोल चाल की हिन्दी में बुन्देलखंड के ग्राम क्षेत्रों की बोलचाल के कई शब्दों का प्रयोग किया है :- जैसे साइत, कुसाइत, मुरेठा, डां आदि । अंग्रेजी के कई शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने, प्रचलित ग्रामीण रूपों में, अप कविताओं में किया है । जैसे टाइम, ट्रेन, लाकेट आदि ।

केदार की काव्य-प्रतिभा का सर्वाधिक वैभव उनकी बिम्ब-निर्माण क्षमता में दिख देता है । अनुकूल छन्द-विधान और शब्दावली से वे ऐसे सुगठित बिम्ब प्रस्तुत करते हैं सजीव और मार्मिक तो होते ही हैं, उनमें जीवन का यथार्थ भी प्रतिबिम्बित होता है तूफान का यह बिम्ब देखिए :

मैं घोड़ों की दौड़ वनों के सिर पर तड़तड़ दौड़ा

और संघर्ष का कितने सुन्दर ढंग से प्रत्यक्षीकरण किया गया है :

तेज धार का कर्मठ पानी
चट्टानों के ऊपर चढ़ कर
मार रहा है घूंसे कस कर
तोड़ रहा है तट चट्टानी

और सरकार द्वारा लागू किये गये आर्डिनेंसों को कैसे मूर्त किया गया है :

कागजी घोड़े विदेशी
हिनीहनाते टाप रखते
ध्वंस करते गांव बस्ती
धूल धरती उड़ाते

केदार सूक्ष्म पर स्वस्थ संवेदनाओं के कवि हैं। वे अपनी पीढ़ी के उन प्रगतिशील कवियों में से एक हैं, जिन्होंने समय के साथ अपनी कविताओं को बदला है और नवीन शिल्प-शैली को अपनाया है। उनकी परवर्ती कविताओं में अभिव्यक्ति के कई ऐसे ढंग हैं, जो नवीन सौन्दर्य बोध के प्रतीक है। जैसे :—

भूल सकता मैं नहीं
ये कुच-खुले दिन
ओठ से चूमे गये
उजले धुले दिन

केदार के सौन्दर्य बोध पर विचार करते हुए शमशेर ने कहा है कि केदार आंखों से पान किये हुए सौन्दर्य के कवि और कलाकार हैं। ध्वनियों को भी जब किसी विशेष प्रभाव के लिए उन्होंने बांधा है, तो अच्छा बांधा है, मगर उनके लिए वास्तव में रंग ही बोलते हैं :

जवान होकर गुलाब।
खोलकर होठ
जैसे आग
गा रही हो फाग ।

× × ×

रंग नहीं, रथ दौड़ते हैं
रंगीन फूलों के,
सान्ध्य गगन में
ध्वजा फहराते हैं
रंगीन स्वप्नों के।
नट नाचते हैं रंगीन छन्दो के
सान्ध्य गगन में !

उनके रंगों के साथ प्राय: कोई न कोई क्रियाशीलता संबद्ध रहती है। अनुभूतियो को पैना धारदार करना, रूप को चटख रेखांकित करना, रोमानी भावना के विशेष नाटकीय क्षण को स्पष्ट आकारों में मूर्त करना-यह ढंग और अन्दाज केदार में बराबर मिलता है।

× × ×

प्रगतिशील आन्दोलन ने हिन्दी कविता को चार महत्वपूर्ण कवि दिये हैं : नागार्जुन, केदार, सुमन और मुक्तिबोध। ये चार कवि प्रगतिशील काव्य के चार स्तंभ ही नहीं, उसके चार अलग-अलग रंग भी हैं। इनका अपना-अपना व्यक्तित्व है। और अपनी-अपनी आभा। नागार्जुन इनमें से सर्वाधिक जनोन्मुख कवि हैं। जनान्दोलनों से सर्वाधिक जुड़े हुए कवि। वे स्वभाव से भी सर्वहारा हैं—पूरी तरह से वर्ग-मुक्त; दलित पीड़ित जनता के अपने कवि। पार्टी-प्रतिबद्धता को बड़ी चीज़ मानने वाले पार्टी-बाज़ आलोचक उनकी राजनीति को लेकर निरन्तर बहस में रत है। पर नागार्जुन किसी एक पार्टी के कवि नहीं है। वे निर्दलीय समतावादी कवि हैं। उन्हें जब जो बात सही लगी, उन्होंने लिखी-चाहे उससे माओ की कोई बात कटती हो या ब्रेजनेव की--इसकी उन्होंने कभी परवाह नहीं की। फिर जहां तक भारतीय सत्ताधारी वर्ग का प्रश्न है : नागार्जुन उसके निरन्तर और संगत विरोधी रहे हैं, किसी सुख-सुविधा के लिए उन्होंने उससे समझौता नहीं किया। यही कारण है कि उन्हें साठ वर्ष के रचना कर्म के बाद भी न तो अब तक सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार मिला और न साहित्य

अकादमी पुरस्कार ही। हां उनकी एक बड़ी कमजोरी उनका लोकप्रियतावाद (पॉपुलिज्म) जरूर है।

उनकी तुलना में केदार और सुमन न केवल सम्पन्न शोषक वर्गों में पले-बढ़े कवि हैं, सत्ताधारी वर्ग के साथ निरन्तर जुड़े भी रहे हैं—एक सरकारी वकील के रूप में और दूसरे अनेक रुपों में। फिर भी इन कवियों को इस बात की दाद देनी चाहिए कि इन्होंने न केवल सत्ताधारी वर्ग से अलग अपनी वैचारिक स्थिति बनाये रक्खी है- बल्कि समय-समय पर सत्ताधारी वर्ग की आलोचना भी अपनी कविताओं में की है। दोनों ही कवियों ने अपना काव्यशिल्प छायावादोत्तर छान्दस शैली की जमीन पर खड़ा किया, पर सुमन में जो ऊर्जा और ऊष्मा, जो जनोन्मुख रेटेरिक, जो वाग्मिता दिखाई देती है, वह केदार में नहीं है। उनकी प्रभावक्षमता के अनुपात में ही 'सुमन,' जी को सत्ताधारियों ने अधिक सुविधाएं प्रदान की और केदारनाथ अग्रवाल को तुलनात्मक रूप से कम। परिणाम स्वरूप सुमन जी पर साम्यवादी दल की नीतियों के अनुसरण का नैतिक दवाब भी कम रहा। केदार जी उनकी तुलना में निरन्तर दल की नीतियों से प्रतिबद्ध रहे। यह सवाल बड़े सीमित महत्व का है कि उन्होंने एमरजैंसी के समय में इंदिरा गांधी का समर्थन किया था या नहीं, इसे अपने गुट-हितो में ही जनवादी लेखक संघ के कारकुनों ने उनके सम्मान समारोह मे गलत ढंग से उठाया। प्रगतिशील आन्दोलन के व्यापक हितो की दृष्टि से यह अधिक महत्व की बात नहीं है कि वे भारतीय साम्यवादी दल के साथ रहते हैं या मार्क्सवादी साम्यवादी दल के। आखिर जब एमरजैंसी का समर्थन करके भी राजीव सक्सेना और भीष्म साहनी प्रगतिशील साहित्य मै जिन्दा हैं और रहेंगे तो केदार ने अगर उसका समर्थन कर दिया था तो कौन गज़ब हो गया।

मुख्य मुद्दा यह है कि स्वतन्त्र राजनीतिक चिन्तन की क्षमता इन दोनों कवियों में मुक्तिबोध से कहीं कम दिखायी देती है। इस दृष्टि से मुक्तिबोध का विचार-बोध इन चारों कवियों में सबसे सशक्त है। उन्होंने न केवल हिन्दी कविता को एक नयी शिल्प शैली ही दी है, मार्क्सवाद से दूर तक प्रभावित होने के वावजूद, एक मौलिक चिन्तन भी दिया है। इसलिए उनकी कविताओं में व्यक्त मार्क्सवाद एक आरोपित विचारधारा की तरह कहीं नहीं आता। मुक्तिवोध ने उसका स्वायत्तीकरण, आन्तरिकीकरण कर लिया है, वह उनका अपना सत्य बन गया है। यही कारण है राम विलास शर्मा जैसे कट्टर कम्युनिस्ट आलोचक उन्हें मार्क्सवादी मानने को ही तैयार नहीं होते।

केदार का इन्द्रिय बोध और भाव बोध सशक्त है, पर स्वतन्त्र ढंग से विचार की क्षमता उनमें लगभग नहीं है। अपने एक साक्षात्कार में वे सहज ढंग से स्वीकार करते हैं कि सोच-विचार कर, परिस्थिति का विश्लेषण कर, यह निश्चय करना कि कौन पक्ष सही है और कौन गलत, यह पार्टी का काम है, हम यह सब नहीं कर सकते। हम तो उसकी नीतियों का अनुसरण करते हुए कविता लिख सकते हैं। ऐसी वैचारकि बेचारगी शायद ही इन चार कवियों में से और किसी में मिले। इस वैचारिक अक्षमता के परिणाम स्वरूप उनकी कविता में आज से पचास वर्ष पहले का वह भोला आस्थावादी स्वर अभी भी मिल जाता है, जो मानवीय इतिहास के इस यातनापूर्ण अध्याय की विडम्बनाओ और बेहूदगियों से एक दम अप्रभावित है। आज, जब मार्क्सवादियों द्वारा "घनघोर रूप से व्यक्तिवादी" घोषित किये गये कवि अज्ञेय तक में इस तथ्य का प्रखर बोध है कि इतिहास में राम और रावण जीतते और हारते है, पर जिनके बनाये हुये पुलों से जीतने वालों की सेनाएं विजय

का अभियान सम्पन्न करती हैं, वे केवल बन्दर कहे जाते है, केदार के इस आस्थावाद को क्या कहा जाये ?

अत्याचारों के होने से
लोहू के बहने, चुसने से
बोटी बोटी नुच जाने से
किसी देश या किसी राष्ट्र की
कभी नहीं जनता मरती है।
सब देशों में, सब राष्ट्रों में
शासक ही शासक मरते हैं
शोषक ही शोषक मरते हैं
किसी देश या किसी राष्ट्र की
कभी नहीं जनता मरती है।

काल के उस मोड़ पर, जहां शासकों और शोषकों ने जनता को ही नहीं, सम्पूर्ण मानव जाति को ही नहीं, पृथ्वी की संपूर्ण जीव सृष्टि को विनष्ट करने की क्षमता अपने नापाक हाथों में हथिया ली हो, यह सतही आस्था हमारे लिए कितनी मूल्यवान है ?

तीन कविताएं

खंडहर

○ प्रयाग शुक्ल

खंडहरों को किसी का इंतजार नहीं—
न ही उन चिड़ियों का जो उड़ती
हैं इन खंडहरों के ऊपर-
बारिश का भी नहीं ।
न धूप का ।
न तारों का ।

खंडहरों को चिंता है तो
सिर्फ दीवारों को फोड़कर
उगे पौधों की,
घास की,
जिनसे बंधे हैं वे ।

शाम

मैं एक कविता लिखना चाहता हूं ।
शाम हो रही है ।
डूबने वाले हैं अंधेरे में पेड़ ।
इमारतों के ओर-छोर
घर जाना चाहती हैं चिड़ियाँ ।
एक सन्नाटा है यहाँ ।
खाली पड़ी हैं बगीचे की कुर्सियाँ ।

आ रही हैं घरों से
आवाजें मिली-जुली।
आकाश फिर लौट आया है अपने में।
मैं एक कविता लिखना चाहता हूँ।

धूल

धूल में पड़ी रहती हैं बहुत-सी चीजें।
तिनके। टुकड़े काँच के। उड़कर कहीं से
चले आए मकड़ी के जाले के तार।
पंख। चिट्ठयों के अक्षर।
चमकती है धूल।

फिर गिरती हैं
नन्हीं-नन्हीं बूंदें
उठती है धूल में पड़ी विस्मृत चीजों
से एक महक।

लम्बी कविता की सार्थकता पर एक बहस

डॉ० राजकुमार

लम्बी कविता संवेगोद्भूत नहीं है। इनमें अन्तःस्फुरग या अन्तः प्रेरणा की अपेक्षा सृजनात्मक तनाव का विशेष महत्व है। सृजनात्मक तनाव संवेदना, कल्पना और विचार के बीच संतुलन के रूप में विकसित होता हुआ कविता को रूपायित करता है। अतः लम्बी कविता समकालीन हिन्दी कविता की तरह ही संवेगात्मक प्रस्फुटन (ऑटोराइटिंग) नहीं रह गई; बल्कि इसमें संवेदनात्मक ज्ञान का ही विशेष महत्व है। परन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि लम्बी कविता में अन्तः प्रेरणा का कोई महत्व नहीं। सत्य तो यह है कि अन्तः प्रेरणा के स्फुरण क्षणिक संवेदन रागोद्भूत बिम्बों, शब्दों या शब्द-चित्रों के विकास के लिए उत्प्रेरक की भूमिका निभाते हैं। संवेदना और विचार के बीच सर्जक कल्पना संतुलन पैदा करती हुई सृजनात्मक तनाव को रूपायित करती है। अतः यह सृजनात्मक तनाव जितना अधिक चिरजीवी और वृहद होता है, कविता में बिम्बों, विवरणों, तार्किक संवादों, रूपकों प्रतीकों तथा नाटकीयतापूर्ण स्थितियों के माध्यम से विसंगत या विडम्बनात्मक स्थिति का फैलाव उतना ही बढ़ता जाता है और कविता वृहदाकार होती चलती है।

लम्बी कविता अनुभवजन्य विचार को ही महत्व देती है, अनुभववाद या विचारवाद को नहीं। बल्कि लम्बी कविता के समर्थकों का दावा है कि अनुभववाद कविता के लिए घातक है। शायद इसलिए कि इनसे ग्रस्त कवि काव्यरूढ़ियों या रूढ़ काव्य-विषयों में फंस कर आत्म-संघर्ष और अभिव्यक्ति के संघर्ष से मुक्त हो जाता है और किसी परम्परागत काव्य ढांचे में बंध जाता है। ऐसी कविता में काव्यानुभव का विकास रुद्ध हो जाता है, कवि अपने ही साहित्यिक रिफ्लेक्सिज का शिकार हो कर स्वयं को दुहराने लग जाता हैं। जबकि काव्यानुभव और रचना-प्रक्रिया अन्योन्याश्रित हैं और कविता को आकार देते हैं। लम्बी कविता में संवेदनात्मक ज्ञान का महत्व है। लेकिन यह भी सत्य है कि कवि की ज्ञानात्मक-संवेदना का लम्बी कविता में अभाव नहीं रहता। ज्ञानात्मक संवेदना विवरणों, दृश्य-परिदृश्यों, सूक्ति-आर्षवचनों और परम्पराश्रित काव्य विषयों के रूप से कवि चेतना में गुंथी रहती है और कविता को सम्प्रेषित करती चलती है। अतः लम्बी कविता मात्र संवेदना का ताना बाना नहीं संवेदनात्मक ज्ञान की विकास यात्रा है।

लम्बी कविता का रूप दो तरह का है—१. काल प्रवाह को सीधे रेखांकित करने वाला लीयनियर, २. काल प्रवाह को विछिन्न करके विपर्यय बोध जगाने वाला, फयूगल। लीयनियर फार्म आख्यानात्मक है जो कविता को सरल और पठनीय बनाती है। जबकि फयूगल फार्म में कालधारा को चेतन-प्रवाह, स्वप्न, फंटेसी तथा मिथक द्वारा खण्डित करके पारे की तरह बिखरा दिया जाता है। बिखराव की इस प्रक्रिया में कालबोध समाप्त-सा हो जाता है जिससे भूत, वर्तमान और भविष्य आपस में घुलमिल जाता है। फयूगल फार्म कविता को जटिलता और दुरूहता की ओर ले जाता है। क्योंकि समकालीन लम्बी कविता समसामयिक युग सत्य को उसकी सम्पूर्णता, संश्लिष्टता और नाटकीयता में पकड़ने की कोशिश है अतः इसका फार्म फयूगल है। जिसमें लाम्बिक तथा क्षैतिज अनुभवों के घालमेल से एक विराट रूपक निर्मित होता है। कवि खण्डित, अखण्ठित, सम्बद्ध-असम्बद्ध बिम्बों, लघु रूपकों, शब्द-चित्रों, विडम्बनात्मक स्थितियों, रागोद्भूत टिप्पणियों, नाटकीय परिणतियों को एक सूत्रता में बांधता हुआ युगसत्य को चित्रित करता चलता है और व्याख्यायित भी।

अतः लम्बी कविता के शैल्पिक संदर्भों की जांच करें तो स्पष्ट हो जाता है कि कवियों ने अपने कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रायः कोलाज, खण्ड-खण्ड प्रस्तुतीकरण, असम्बद्ध बिम्बों की एकतान शृंखला, नाटकीय स्थितियों में अर्न्तगुंथन, साहचर्य या मुक्त-आसंग, स्वप्न, फंटेसी, मिथक, प्राचीन कथावृत्तों और परम्परानुमोदित रहस्यलोकों के संयोजन की पद्धतियों को अपनाया है।

कोलाज पद्धति से भूत और वर्तमान के अन्तर्सम्बन्धों को स्पष्ट किया जाता है जिसमें कविता को ठोस-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मिलता है। इस पद्धति में कोलाज सांस्कृतिक-सामाजिक परिवर्तन के आयामों की ओर संकेत करते हुए रचना का आर्गनिक अंग बन जाते हैं। खण्ड-खण्ड विभाजन की पद्धति सम-विषम काव्य चित्रों की एल्बम तैयार करती चलती हैं और कविता संश्लिष्ट तथा बहुआयामी होती चलती है। स्पेसिंग, विषयांतर और टोनांतर के माध्यम से खण्डों का आभास होता चलता है। कवि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से गृहीत सम्बद्ध, असम्बद्ध बिम्बों की शृंखलाएं निर्मित करता है और कविता को व्यापक, समसामयिक यथार्थ से भरता जाता है। असम्बद्ध बिम्बों के बीच साहचर्य स्थापित करके या विरोधी दृष्टिकोणों के प्रस्तुतीकरण के लिए नाटकीय टकराहट पैदा करके भी कवि वृहद चित्र खड़े कर लेता है और कविता बहुआयामी हो उठती है।

स्वप्न, फैंटेसी और रहस्यलोकों द्वारा कवि सामाजिक यथार्थ के अनेक संक्रान्त और जटिल सम्बन्धों को कभी तो सरलता से उजागर कर देता है तो कभी उन्हें और भी अधिक दुरूह बना देता है। यह दुरूहता बेशक कविता की गति के लिए घातक रहे पर उसकी संगत-असंगत या परस्पर विरोधी व्याख्यायों की छूट देती हुई कविता को अनेकायामी बना देती है। समकालीन कवि का काव्यानुभव लाम्बिक तथा क्षैतिज अनुभवों के द्वन्द्व से विकसित होता है, विकासक्रम में कभी कवि अन्तर्जगत से बाह्यजगत की ओर तो कभी बाह्यजगत से अन्तर्जगत की ओर यात्रा करता है। इसके अतिरिक्त कभी अन्तर्जगत में भीतर तो कभी बाह्यजगत में बाहर ही बाहर यात्रा करता है। रचना-प्रक्रिया के दौरान ये सभी यात्राएं परस्पर टकराती भी हैं, समानांतर भी होती है, निकट साहचर्य में भी आती हैं और परस्पर विरोधी भी हो जाती है। अतः फंटेसी और स्वप्न शैलियों के द्वारा कवि इन टकराहटों से उभर रहे रूपों को काव्यभाषा में पकड़ने का सजग यत्न करता है जिससे लम्बी-कविता रूपायित होती चलती है। जैसे बाह्य जगत के संघर्ष के अनेक रूप हैं वैसे ही कवि

के अन्तर्जगत में भी अनेक प्रकार के संघर्ष चलते रहते हैं। इन भीतरी टकराहटों के कई रूप हैं जैसे चेतन और अचेतन के आशा और निराशा के, क्रिया और कर्महीनता के, भय और साहस के, जय और पराजय के। इन भीतरी रूपों की परस्परट कराहटें संवादों में सम्बोधनों में मूक दृश्यों और क्रियाओं में अभिव्यक्त होती हुई कविता को आकार देती चलती हैं। भाव यह कि कवि के आत्म संघर्ष और सामाजिक संघर्ष में से गुजरने के कारण कविता जटिल होती जाती है। अतः कवि की संवेदना जितनी जटिल और बहुआयामी होगी कविता की संरचना में उतनी ही अधिक जटिलता आएगी। इसी कारण फैंटेसी तथा स्वप्न के टुकड़ों की भांति यहां काव्याभिव्यक्ति अनेक चित्रों में बिखर जाती है। फिर भी कविता में आए इन दृश्यों-परिदृश्यों पर असंभवता, क्रमहीनता या देशकाल च्युति का दोष नहीं लगाया जाता। इस तरह लम्बी कविता में बुनियादी यथार्थ के आधार पर बुने गए स्वप्नों, रूपों, क्रियाओं आदि के चित्र बहुरंगी, बहुआयामी होकर कविता के बुनियादी यथार्थ को प्रसरणशील तथा बहुआयामी बनाने चलते हैं।

उपर्युक्त काव्यशैलियां कवि की सजगता का परिणाम हैं। सजगता के बूते ही कवि बिम्बों, चित्रों, रूपकों, प्रतीकों, स्वप्नों, रहस्यलोकों, मिथकों के बिखराव को किसी भीतरी एकतानता, एकसूत्रता, केन्द्रीय विचार या केन्द्रीयभाव से बांधता चलता है। इसी अन्तर्ग्रंथन से कविता विकसित होती जाती हैं। इन शैलियों के अतिरिक्त डॉ० रमेश कुन्तल मेघ ने सन्निपात, अतिमूर्छा, मायावरण, भ्रम-संभ्रम शिजोफ्रेनिया, पैरानोइआ ? आदि मानसिक बीमारियों या बीमार मनःस्थितियों के लक्षणों को घुलामिला देने से भी लम्बी कविता को रूपायित होते माना हैं। वे लगभग यह स्पष्ट कर देते हैं कि कवि की ऐसी बीमार मनः स्थिति के कारण जहां काव्यगत चिंतन में बिखराव, व्यवधान साहचर्य-शृंखला का विघटन होता है वहीं असम्बद्ध बिम्बों विरोधभासों और विपरीत्यों में तार्किक समानता के आधार पर जुड़ाव भी पैदा होता है। शिजोफ्रेनिया के उन्माद में एक जैसी तीव्रता वाली परस्पर विरोधी अनुभूतियों की टकराहट पैदा हो जाती है। जो कुतूहल, आश्चर्य और आंतक पैदा करती है। मुक्तिबोध और राजकमल चौधरी की कविताओं को परखने के लिए उपर्युक्त बीमार मनः स्थिति के लक्षणों को समझना बहुत आवश्यक है।

लम्बी कविता के शिल्प की तरह इसकी रचना प्रक्रिया भी जटिल है। मुक्तिबोध ने रचना-प्रक्रिया को सतत अन्वेषण की प्रक्रिया माना है। अन्वेषण के आयाम अनेक हैं जैसे काव्यभाषा का अन्वेषण, प्रतीकों, बिम्बों, रूपकों का अन्वेषण, स्वप्नों मिथकों, फैंटेसियों का अन्वेषण और काव्यानुभव के अनुकूल द्वन्द्वों का अन्वेषण। अन्वेषण अधिकतर बौद्धिक प्रक्रिया है। परन्तु काव्यगत अन्वेषण मात्र बौद्धिकता के धरातल पर ही नहीं होता बल्कि अनुभव, संवेदना और बौद्धिक विचार के संतुलित विकास के साथ ही होता है। यह भी सत्य है कि कवि का अनुभव तात्कालिल स्थितिजन्य ही नहीं होता बल्कि स्थिति-पूर्व-अनुभवों की तहों को भी साथ-साथ लिए चलता है यानी कवि के जीवन के पूर्व अनुभव, संस्कार, अध्ययन और चिंतन आदि से अपनी ज्ञानात्मक-संवेदना, परिवेश और युगीन आवश्यकताओं आदि का भी योगदान रहता है, कवि की जीवन-दृष्टि, उसकी प्रतिबद्धता या पक्षधरता, रचनाक्षणों में कवि की मानसिकता परम्परा अनुमोदन या परम्पराशोधन सम्बंधी कवि का दृष्टिकोण आदि अनेक ऐसी चिंताएं और आकांक्षाएं हैं जो उसके काव्यानुभव को बनाती-बिगाड़ती और बनाती चलती हैं! भाषा की अपनी आन्तरिक व्यवस्था भी काव्यानुभव को प्रभावित करती है। ये सभी तथ्य कवि की रचना प्रक्रिया में हिस्सेदार रहते हैं।

कवि चेतना अपनी उपर्युक्त सीमाओं में बंधी हुई और शक्तियों को जुझारू बनाती हुई सृजनात्मक तनाव को अनुशासित रखती है। इस अनुशासन के अन्तर्गत ही कवि का सृजनात्मक तनाव सतत तनाव और विश्रांति के क्षणों में वंटा रहता है और सृजन-प्रक्रिया कई-कई बैठकों में बंट कर भी विद्यमान रहती है, जिससे सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के काव्य तत्व संश्लिष्ट आयाम अख्तियार करते रहते हैं। सृजनात्मक तनाव के दौरान आए विश्राम के क्षणों में विषम-वस्तु के चुनाव और रचाव की संभावना बढ़ती रहती है। और किसी न किसी केन्द्रीय स्थिति के आस पास जीवन के व्यापक संदर्भ-स्थितियां तनी बनी रहती हैं, जिसमें लम्बी कविता का शिल्प म्योरिल का जैसा शिल्प हो जाता है। इस शिल्प चेतना के कारण सर्जनात्मक तनाव भाव, कल्पना, विचार और संवेग को काव्यानुभव में ढालता चलता है।

लम्बी कविता को विद्वानों ने आधुनिक जीवन की गहरी, संश्लिष्ट तथा जटिल, किन्तु आकुल छटपटाहट की काव्याभिव्यक्ति कहा है और कहा है कि इसका रूपविधान एक व्यापक किंतु विरूप वस्तुजगत की असंगतियों, अमानवीयताओं और निरर्थकताओं से जूझने की नाकाम कोशिश से बनता है। इसके शिल्प को लगातार और आतंकमयी लम्बी चीख की तरह का भी कहा गया है, जो असम्बद्ध तथा विश्रृंखल बिंबों, दृश्यखंडों की तर्कहीन योजना की तरह का किसी अर्द्धविक्षिप्त व्यक्ति के अवचेतन में बसती-बिगड़ती, खंडित टूकटूक परछाइयों की तरह का, आवेश और आवेग से फेनिल पछाड़ खाती लहरों के चुटीले आधात की तरह का, किसी आक्रोश में जलते व्यक्ति मन के नपुंसक क्रोध की अनिवार्य अभिव्यक्ति की तरह का, किसी 'सिनिक' के अविश्वस्त मन की कटु और तेजाबी व्यंग्यमयता की तरह का हो सकता है। कुल मिलाकर लम्बी कविता की अन्तर्वस्तु प्रोटेस्ट, असहमति, असहिष्णुता, अनुदारता की होती है और उसका रूप अनगढ़, असहज, असंस्कृत और स्वतः स्फूर्त होता है। इस तरह संयम और कलात्मक सूक्ष्मता की अपेक्षा बिवात्मक अपचय और अपव्यय समकालीन लम्बी कविता को परम्परागत कविता की सुगढ़, सुनिश्चित अवधारणा के विरोध में खड़ा करता है!

लम्बी कविता की काव्यगत क्षिप्रता जो अपने कगार तोड़कर बहती हुई मटमैली नदी की सी रौद्र, आकुल, तीक्ष्णता से गतिमान रहती है—कविता के बिखरे हुए ढांचे को एक सूत्रता में बांधे रहती है! अतः कविता की यह क्षिप्र गतिमयता, असम्बद्ध बिम्बों और ठहरे हुए शब्द चित्रों का आलोड़न कविता की अपनी अतिरिक्त उग्रता के कारण पूरे परिदृश्य की सवाक् योजना बन कर इसके प्रवाह में कच्चे माल की तरह खप जाता है, बिल्कुल वैसी ही जैसे किसी उफनती हुई नदी की प्रचण्ड धारा में बहता हुआ मलबा, कूड़ा-कतवार, मकानों के छप्पर, बल्लियां और उखड़े हुए पेड़। अतः लम्बी कविता के नितांत निर्जीव और अनावश्यक उपादान भी प्रचण्डवेग में सार्थकता पा जाते हैं। क्योंकि ये सब परिवेशगत दृश्यखण्डों और संदर्भों के रूप में एकत्रित करके कविता की केन्द्रीय संवेदना के गिर्द फैला दिए गए होते हैं।

क्योंकि कविता में भाषा बिम्बमयी होती है अत. लम्बी कविता के बिम्ब समस्त अनुभूति को वहन करते हैं। लम्बी कविता में जब लांबिक और क्षेतिज अनुभव परस्पर जूझते हैं तो व्यापकता और सघनता, लघुता और विराटता, ध्वनि और रंग, देश और काल, प्रकृति-धर्म और मानवीय स्वभाव एक दूसरे की सापेक्षता में सक्रिय हो उठते हैं। यह सक्रियता सृजनात्मक तनाव को ऐन्द्रजालिक सम्मोहन, उत्तेजना और मादकता के असाधारण आकर्षण से भरने लगती है। ऐन्द्रजालिक सम्मोहन का आश्चर्यजनक विधान लोक भाषा, विराट लोक-

परम्परा, प्रकृति, स्मृति और श्रुति के सर्जनात्मक सामीप्य से भी विकसित होता है।

लम्बी कविता के संकेतों, प्रतीकों, बिम्बों, शब्दचित्रों, भावचित्रों से अर्थ की प्रतीति ही नहीं अर्थ परम्परा की भी प्रतीति होती है जो लम्बी कविता में बौद्धिक भावात्मकता के रूप में अनुस्यूत होती है। इसी बौद्धिकता या तर्कानुमोदित संवेदना के कारण प्रतिक्रिया आवेग उद्वेलन, विस्फोट या उत्तेजना की अपेक्षा कवि सामाजिक मानवीय संकटों को अत्यन्त धैर्य और निरावेग रूप से प्रस्तुत करता चलता है और युगबोध को, संभावनाओं के पक्ष विपक्ष को तार्किक स्तर पर विश्लेषित करता जाता है। तभी तो कहा गया है कि समकालीन लम्बी कविता अन्तर्वस्तु के संतुलन के बावजूद परम्परा और विद्रोह दोनों की ही कविता है। जिसमें वस्तु और चेतना का द्वन्द्व अतीत और वर्तमान की छानबीन करता हुआ भविष्य का संधान करता चलता है।

लम्बी कविता में टेक और लय का अपना महत्व है। टेक किसी अनुभव को दुहराती भी है और उसे नये-नये आयामों से जोड़ती भी है, यह स्थिति और गति के प्रभाव को घनीभूत भी करती है और नाटकीयता के कारण कविता में नजदीकी रिश्ता भी कायम करती है। टेक का आधार ग्रहण करके भूत, भविष्य और वर्तमान एक बिंदु में संक्रमित हो जाते हैं और चेतना को केन्द्रित दबाव दे कर नया काव्यानुभव पैदा करते हैं। लय, चाहे कवि व्यक्तित्व की आंतरिक लय हो, चाहे काव्य विषय की आवयविक अंग, इसका अपना महत्व है। लय अपनी आंतरिक क्षमता के सहारे अनुभूतियां वहन करती हुई उसे प्रसंगानुकूल सौंदर्य, उत्तेजक सम्मोहन, मधुरता, कोमलता, रूक्षता, कटुता आदि से भरती चलती है और अनुभूति को अधिक गहरा, संकुल और आस्वाद्य बना देती है। लय अर्थ को ऊर्जा सम्पन्न तथा संश्लिष्ट तो बनाती ही है विरोधी और विषम अनुभवों को तनावपूर्ण स्थितियों को परस्पर बांध कर या उनमें टकराहट पैदा करके नये काव्यार्थ उभारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी ने कहा भी है कि लय दो अलग भाव स्थितियों को एक साथ जोड़ती है, तानती है और खास बलाघात एवं तारत्व (पिच) के आधार पर भाषा का भी गठन करती है।

लम्बी कविता के शिल्प, काव्यानुभव के रूप, रचना-प्रक्रिया, समकालीन युग सत्य से प्रतिबद्धता और इसकी विभिन्न शैलियों या पद्धतियों के साथ-साथ टेक और लय का विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि लम्बी कविता में केन्द्रीय भाव को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए भावावेग, कल्पना, विचार और अनुभूति के संतुलन का विशेष महत्व है। कवि व्यक्तिगत जीवन और सामूहिक जीवन के संघर्षों, उसके परस्पर विरोधी चित्रों, विरोधी अनुभूतियों को किसी केन्द्रीय भाव या विचार के धागे से बांध कर फैलाता चलता है। इस उपक्रम में केन्द्रीय विचार या भाव, अनुभूतिजन्य विचार, कवि का परिवेश, उसका स्वभाव, अध्ययन, चिंतन या मनन, उसकी जीवन दृष्टि आदि का विशेष योगदान रहता है। कविता अपने रागात्मक और वैचारिक आयाम में बड़ी होती जाती है और कवि का वैयक्तिक द्वन्द्व सार्वभौम द्वन्द्व बनता है।

कविता सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के विकास और उसके प्रसरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कविकर्म कवि की सामाजिक चेतना के विकास में हिस्सेदारी ही है। अतः कविता की सामाजिक भूमिका ही उसे सार्थकता देती है। यह भी कहा जा सकता है कि लम्बी कविता उतनी ही सार्थक होगी जितनी कवि की सामाजिक चेतना तथा उसका काव्यानुभव प्रासंगिक होगा। काव्यानुभव के जरिये कवि अपने अन्तर्जगत के उद्वेलनों को जितना

संवेदनात्मक ज्ञान में बदलने में सफल होगा, कविता उतनी ही सार्थक होगी। अन्तर्जगत की परम्परा, संस्कृति और वस्तुजगत से तालमेल का स्तर ही कविता की सार्थकता की कसौटी हो सकता है। व्यक्तिवादी दृष्टिकोणों ने साहित्य की आलोचना पद्धति को काफी धूमिल किया है और वे कविता को सहृदय के मन से स्थिति च्युत करने में काफी सफल भी रहे हैं। कुछ कविताओं को इस दृष्टिकोण से कुछ लाभ भी हुआ होगा...इतिहास के पन्नों का। परन्तु लम्बी कविता वैयक्तिक सीमाओं का अतिक्रमण करती है। लम्बी कविता में काव्यानुभव देश-काल की सीमाओं से ऊपर उठकर वैश्विक हो जाता है, जिससे कविता अधिकाधिक सार्थक होती जाती है। लम्बी कविता अपने वर्तमान को समाहित करती हुई और अतीत में जड़ें फैलाती हुई भविष्य की ओर बढ़ती है। अत: उसमें जितना अधिक फैलाव होगा, सार्वभौम, सार्वकालिक जीवन पर कविता की पकड़ जितनी अधिक मजबूत होगी कविता उतनी ही सार्थक होगी। मेरे विचार से समकालीन लम्बी कविता की सार्थकता को इसी कसौटी पर परखना बेहतर होगा। वैसे साहित्य या कविता की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह जड़ना जितना सुगम और सुविधापरक है, उत्तर देना उतना ही असाध्य या अपूर्ण! क्योंकि कलाओं की सार्थकता उपयोगितावादी दृष्टि से नहीं परखी जा सकती।

उपयोगितावादी दृष्टिकोण विज्ञान द्वारा मिली सुविधाओं के कारण विकसित हुआ है। विज्ञान के विभिन्न अनुशासनों - वह चाहे भौतिक विज्ञान हो चाहे रासायनिक विज्ञान, चाहे शरीर विज्ञान हो चाहे मनोविज्ञान, चाहे स्थापत्य विज्ञान हो, चाहे आग्नेयास्त्र विज्ञान — की सार्थकता का आधार है इनकी उपयोगिता। अत: मानव मात्र के लिए ये ज्ञान-अनुशासन जितने अधिक सुविधादायक होंगे उतने ही सार्थक भी होंगे। इनकी उपयोगिता का दूसरा पहलू भी है-मानव मात्र के ध्वंस के लिए। विज्ञान का ध्वंसक पहलु जब भी क्रियमान हुआ है, साहित्य (हित की इच्छा) की सार्थकता उतनी ही गंभीरता से अनुभव होती रही है। साहित्य उतना ही प्रासंगिक हो उठता है क्योंकि साहित्य मानव-मात्र की चेतना को परिष्कृत करता हुआ मानवविरोधी प्रक्रियाओं के विरुद्ध जनमत तैयार करने की भूमिका निभाता है। प्राचीन युग में धार्मिक दृष्टि के अनुसार साहित्य की सार्थकता आंकी जाती थी तो आधुनिक युग में स्वार्थसाधन को ही सार्थकता की कसौटी माना जा रहा है जो मानव विरोधी दृष्टि का ही परिचायक है। साहित्य की मूल चेतना स्वातंत्र्य की तलाश ही रही है, मानव मात्र का मुक्ति संघर्ष ही साहित्य की केन्द्रीय धारा रहा है। अत: इसी को साहित्य या कविता की सार्थकता की परख की कसौटी बनाना होगा।

मौजूदा विश्व में सुविधा और स्वार्थ-पूर्ति के संघर्ष का अखाड़ा बन गई है राजनीति। राजनीतिक सत्ता ही सभी सुविधाओं को देने वाली हो गई है, परन्तु राजनीति का अपना कोई आदर्श नहीं रहा। राजनीति अनेकायामी होकर स्वार्थ पूर्ति का हथियार बनती जा रही है। इसी रौ में बहते हुए मानव ज्ञान-विज्ञान का मानव विरोधी हथियार के रूप में इस्तेमाल करने की और प्रवृत हो रही है। ऐसी स्थिति में साहित्य भी राजनीति प्रेरित होता जाए तो कोई बड़ी बात नहीं। ऐसे में वही साहित्य सार्थक होगा जो मानव-मात्र की कल्याण-कामना से जुड़ा हो, जो मानव-विरोधी शक्तियों से मानव-भविष्य को सुरक्षित रखने की चेतना को जगा रहा हो, मानव-मात्र के वर्तमान को सुविधामय, बंधनमुक्त बनाने के प्रति प्रतिबद्ध हो, शोषित-पीड़ित बहुजन के प्रति पक्षधर-चेतना को तार्किक मानवीय शाश्वत जरूरतों के संदर्भ में प्रस्तुत करता हो, सामाजिक-विकास की गति अवरोधी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष-चेतना को विकसित करने के प्रति प्रतिबद्ध हो। समकालीन लम्बी कविता की सार्थकता

भी इसी कसौटी पर परखी जाए तो उचित रहेगा।

समकालीन लम्बी कविता की अन्तर्वस्तु प्रोटैस्ट, असहमति, असहिष्णुता, अनुदारता की है। लम्बी कविता वस्तु जगत की संश्लिष्ट जटिल किन्तु त्रासद स्थितियों के अस्वीकार की विस्फोटक, दीर्घ तथा समान रूप से जटिल एवं संश्लिष्ट काव्याभिव्यक्ति है। रघुवीर सहाय के शब्दों में समकालीन कविता पूंजीवादी व्यवस्था की निम्न-मध्यवर्गीय आलोचना है। उत्पीड़न और आर्थिक वैषम्य से उद्भूत राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक और मानवीय संकट पर निम्न मध्यवर्ग की निगाह से की गई यह एक टिप्पणी समकालीन लम्बी कविता पर भी पूर्ण उतरती है। लम्बी कविता की सार्थकता न तो कवि सापेक्ष है न वर्ग-सापेक्ष बल्कि सार्वभौम और मानव-कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता में निहित है। मानव-घाती शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष चेतना को विकसित करने में लम्बी कविता ने महत्वपूर्ण योग दिया है। समकालीन लम्बी कविता छायावादी युग से ही मानव-मुक्ति-संघर्ष में मानव विरोधी शक्तियों को चुनौती देती हुई प्रतीत होती है क्योंकि कवि मानवी जीवन को अलभ्य और अनमोल मानता रहा है। इसे छीनने का अधिकार वह किसी को नहीं दे पाया, जयशंकर प्रसाद की कविता 'प्रलय की छाया' में से निम्नलिखित पंक्तियां इस संदर्भ में देखी जा सकती हैं—

"जीवन सौभाग्य है, जीवन अलभ्य है। ..जीवन अनंत है।
इसे छिन्न करने का किसे अधिकार है ?"

मानव मुक्ति-संघर्ष में व्यक्ति को चाहे कितनी ही विसंगतियों, विडम्बनाओं, अवरोधों, भ्रमजालों और पराजय-बोध को क्यों न पाटना पड़े, चाहे कितनी ही थकन, ऊब, आतंक, घुटन, संत्रास या अन्य आत्मघाती या मानवघाती मनोवृत्तियों या परिस्थितियों से क्यों न जूझना पड़े। मानव-विरोधी शक्तियां मानव-जीवन की आदर्श भावनाओं न्याय, सत्य, दया, अस्तेय, साहस, धैर्य आदि पर चाहे कितनी ही कालिख पोतने के प्रयत्न करें जीवन की अजस्र धारा रुकती नहीं। संघर्ष के तेवर कुंद नहीं पड़ते, कुछ क्षणों के लिए संशय, पराजय, भय, असमर्थता के आवेश बेशक मानवी साहस को घेर लें लेकिन मानव की जुझारू शक्ति इस सब से मुक्ति का रास्ता ढूंढ ही लेती है।

मानव मात्र की इसी संघर्ष-गाथा को निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में व्याख्यायित किया है। मौजूदा युग में आतमवादी प्रवृत्ति के घोरतर होते जाने के कारण सत्य-न्याय-धर्म का पालन कर लेना असंभव होता जा रहा है क्योंकि सत्ता और दैवी कृपा भी घोर व्यक्ति-वादी होकर अपने पिछलग्गुओं का पक्षपालन कर रही है! फिर पिछलग्गू चाहे कितना ही अन्यायी, अधर्मी, अपहर्त्ता क्यों न हो। प्रस्तुत कविता में राम के रूप में निराला की यही पीड़ा लक्षित होती है जैसे—

देखा है महाशक्ति रावण को लिये अंक/लांछन को ले जैसे
शशांक नभ में अशंक,/ .... आया न समझ, में यह
दैवी विधान,/रावण अधर्मरत भी अपना मैं हुआ अपर।

लेकिन शक्ति द्वारा इस अन्याय-पक्ष पालन के बावजूद मानवीय साहस अटकता नहीं, वह अपने लिए नये रास्ते ढूंढ लेता है, नयी शक्ति की कल्पना करके आगे बढ़ता रहता है। परन्तु मानवी-आदर्शों को तिलांजलि नहीं देता! निराला का यह आशावाद कि अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में मुक्तिकामी मानव विजयी होगा, कोरा आशावाद नहीं है बल्कि इसमें खौलते रक्त वाले साहस, कर्म अनुष्ठान में परिणत होने की विकास यात्रा का विश्लेषण हुआ है।

आत्मवादी और राष्ट्रवादी स्वार्थ, लोभ, प्रभु सत्ता की कामना ने राजनीति का पुराना अर्थ (प्रजाकल्याण के लिए राज की कार्यप्रणाली) बदल दिया है, अब तो इसका यही अर्थ है कि कैसे स्वार्थ को साधा जाए ? वह स्वार्थ चाहे कितना ही मानव विरोधी क्यों न हो और उसे साधने के लिए उन्हें मानवी मूल्यों का कितना ही हनन क्यों न करना पड़े। स्वार्थ प्रवृत्ति के घोर से घोरतर होते जाने की प्रक्रिया में मानव भविष्य अधर में लटक गया है, मानवीय भविष्य पर संकट बढ़ता जा रहा है। समकालीन लम्बी कविता में इस संकट को पहचानने और इससे जूझने की प्रेरणा लगभग सभी कवियों ने दी है, मानवीय गरिमा को दूषित करने वाली शक्तियों का परिचय कवि नरेश मेहता की लम्बी कविता 'समय देवता' में विशद रूप धारण कर गया है, कवि की मानव-कल्याण चेतना देश और काल की सीमाएं लांघती हुई वैश्विक हो उठी है और मानव विरोधी शक्तियों के विरुद्ध जन जन को आंदोलित करने का यत्न प्रस्तुत कविता का केन्द्रीय-विचार बन गया है –

"फसल जल रही, मनुज मर रहा। समय देवता बम के गोलों से भी धरती बांझ हुई है। मेरे इस जर्मन प्रदेश मे घर कोई नाम नहीं है। वसुंधरा से धरा बना दी गई आज है फौजी नक्शा। इस दक्षिण के अफ्रीका में श्वेत श्याम में युद्ध हो रहा। मनुज मनुज की घृणा जल रही और जल रहा जीवन का सुख।"

नरेश मेहता के लगभग सारे काव्य साहित्य में अधिनायकवादी और साम्राज्यवादी राजनीति को मानव मात्र के लिए अकल्याणकारी माना गया हैं। यह राजनीति व्यक्ति को साहस, शौर्य, प्रतिभा, लोक-कल्याणी-श्रम को हिंसा, परतंत्रता की बेड़ियों में बांधकर लोभ परक जिज्ञासा को पूरा करती प्रतीत होती है। कवि ऐसी राजनीति से मुक्ति चाहता है और कह उठता है–

"नये मनुज के हाथों में श्रम की रेखाएं। आल्प्स रचेगा नये रूप में।
राइन, गोल्गा, गा से वह इस धरती पर आज नये जल छंद लिखेगा।"

कवि धर्मवीर भारती का काव्यस्वर भी लगभग ऐसा ही है, वह भरी स्वातंत्र्य की चेतना, साहस, ज्ञान और जीवन की अग्नि को दहकाने वाला कवि है और मानव-मात्र को निरुत्साही, दास, कायर, आतंकित अंधेरा ग्रस्त और कुण्ठित बनाने वाली शक्तियों के विरुद्ध आवाज उठाता है और जन-जन को अपने भीतर से उपर्युक्त मूल्यों को उपजाने की प्रेरणा देता है। धर्मवीर भारती ने बाह्य प्रेरणा यानी ज्ञानात्मक संवेदना की अपेक्षा आन्तरिक प्रेरणा यानी संवेदनात्मक ज्ञान को वरीयता दी है। उनकी कविता प्रमथ्युगाथा इस संदर्भ में एक सार्थक कविता है। प्रमथ्युगाथा का अग्नि, गिद्ध और प्रमथ्यु सभी के आत्मालाप मानव मात्र में फैली कायरता, साहसहीनता, अज्ञान दैन्यप्रेरक-विनय, दासता को मानव घातक वृत्ति घोषित करते हैं और स्पष्ट करते हैं कि ऐसे मानवों के लिए ज्ञान का, जीवन का, साहस-शौर्य का शत्रु, दाहक ताप का और स्वातंत्र्यचेतना का प्रतीक अग्नि स्वयं को अपमानित ही अनुभव करेगा :–

"अग्नि–स्वयं को अपमानित किया। मुझको क्यों माथे से लगाकर। फिर फैंक दिया इन कायरों के बीच"।

अतः 'प्रमथ्यु गाथा' में आचरण विहीन मूल्यों को त्याज्य समझकर संवेदनाजन्य विचार या मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता को काव्यबद्ध किया गया है। ऐसे ही मूल्यों का अन्वेषण समकालीन कविता की मूल-प्रवृत्ति रही है। मुक्तिबोध की कविता तो है ही आत्म संघर्ष और मूल्यान्वेषण की कविता। वे तो स्पष्ट कहते भी है कि रचना प्रक्रिया नतन अन्वेषण की प्रक्रिया है। कवि को वैयक्तिक रुचियों, साहित्यिक रिफ्लैकसज के कारण होने वाली

आवृत्तियों-रैपीटीशनज़—से बचना चाहिए। उनकी दृष्टि में कविता की सार्थकता आत्मान्वेषण में, मूल्यान्वेषण में और अभिव्यक्ति-अनुवेषण में ही है। अभिव्यक्ति के लिए तो वह सारे खतरे उठाने को तैयार हैं। यही कारण है कि मुक्तिबोध का काव्यानुभव युग के समानान्तर न होकर युग और जीवन से जूझता हुआ काव्यानुभव है। उनकी रचना-प्रक्रिया काव्यानुभव को पैना बनाने वाली, चेतना को झकझोरने वाली, गह्वरों, गुफाओं, घुमावदार सीढ़ियों और चट्टानी रास्तों में आगे बढ़ने का आह्वान देने वाली यात्रा है। इस यात्रा के बिना मूल्यान्वेषण संभव नहीं क्योंकि—

"दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर/दानों को चुगने चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कट/कोई भी मुरगा/यदि बांग दे उठे जोरदार/बन जाए मसीहा।" (अंधेरे में)

बल्कि उनकी निगाह में अभिव्यक्ति का अर्थ है भीतर के अनुभवों को सही रूप से व्यक्त करना। क्योंकि भीतर का अनुभव अन्तर्विरोधग्रस्त है। कवि जन-जीवन के लिए सपने देखता है, उसके दर्द को महसूस करता है, मुक्ति की पीड़ा को लिए हुए है किन्तु साथ ही उसमें भय है, पलायन है, अवचेतन का अकेलापन और अन्तर्मुखता है, इस सबके रहते हुए जनजीवन से कवि जुड़ना चाहता है। मुक्तिबोध की निगाह में अभिव्यक्ति का तात्पर्य है सक्रिय रूप से जनजीवन से जुड़ाव। यह जुड़ाव ही कविता की सार्थक भूमिका है। लेकिन विवेक जागृत कवि अपने व्यक्तित्व के अनुभवों को पूरी अभिव्यक्ति नहीं दे पाता। यानी जो मूल्यान्वेषण हुआ है वह जनजीवन से जुड़ नहीं पाता। कविता सार्थक उपयोगी हथियार नहीं बन पा रही। अंतत: "अंधेरे में" का कवि आत्म पहचान के इस धरातल पर पहुंचता है कि कवि के भीतर सबसे खतरनाक चीज है—विचार! वह विरोधी शक्तियों के खिलाफ जनता में अपने विचारों के परचे बांटता है। उसके इन विचारों की सैकरेट्री है आस्था और सरगना (प्रधान) है आत्मा। अत: इस आस्था और आत्मा के रहते ही कवि सार्थक भूमिका निभा सकेगा। मुक्तिबोध ऐसी आत्माजन्य आस्था और आस्था-जन्य विचारों की अभिव्यक्ति को निष्क्रिय और शक्ति शून्य बनाने वाली विरोधी शक्तियों को निरर्थक करने में ही कविता को सार्थक समझते हैं और कविता की सार्थकता के लिए अन्त:-अन्त: अन्त:-बाह्य, बाह्य-अंत:, बाह्य-बाह्य के लाम्बिक और क्षैतिज अनुभवों से टकराते हुए मार्ग बनाते चलते हैं। इसी प्रक्रिया में कविता सार्थक होती है।

मुक्तिबोध की तरह का ही एक और कवि है—राजकमल चौधरी। वह अपनी कविता 'मुक्ति प्रसंग' में आधुनिक सभ्यता, संस्कृति, राजनीति, मानवीय आस्था, आत्मा के अंग-भंग या अमानवीकरण को रेखांकित करता है। अमानवीकरण की इस प्रक्रिया को उद्घाटित करने के लिए राजकमल चौधरी अपने शरीर के रग-रेशों में अपने देश का नक्शा देख रहा है :—

"लेकिन मेरा देश, मेरा पेट, मेरा ब्लाडर भी अंतड़ियां खुलने से पहले/सर्जनों को जान लेना होगा/हर जगह नहीं है जल अथवा रक्त अथवा मांस/अथवा मिट्टी/केवल हवा, कीड़े, जखम और गंदे पनाले हैं। अधिक स्थानों पर इस देश में।"

और इस तरह अपने जिस्म के अंग-भंग में देश के नक्शे को झांकता हुआ कवि उस राजनीति को भी उघाड़ता है जो इस अंग-भंग के लिए सततक्रियामान है और जिम्मेदार है और वह राजनीति है—

" देह की राजनीति से विकट सन्निकट और कोई राजनीति नहीं है
संजय अन्न और अफीम की राजनीति यहीं शुरू होती है जन्म लेता है यहीं मृग मारीच।"

यही राजनीति वैश्विक अंग-भंग में लगी हुई है। सारा विश्व दो भागों में बंटकर रह गया है और ज़िंदगी नंगी मजबूत औरत की तरह आत्मविभाजित हुई पड़ी है—

"इस दुनिया की सबसे नंगी मजबूत औरत का नाम है वियतनाम/उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम/उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया। /पाकिस्तान और हिन्दोस्तान सफ़ेद अमरीका और काला अमरीका/जॉनसन का अमरीका और ऐलन गिंसबर्ग का अमरीका/इंदिरा गांधी का हिंदोस्तान और मलयचौधरी का हिंदोस्तान/इस दुनिया की प्रत्येक मजबूत औरत नंगी ओर दो टुकड़ों में बंटी हुई/यह औरत मेरी मां और मेरी बीबी मेरा देश और मेरी ज़िंदगी। "

समकालीन कवियों ने स्वार्थ प्रेरित राजनीति पर जोरदार प्रहार किये हैं। उन्हें लगता है जैसे आधुनिक समाज में राजनीति का प्रभाव सर्वग्रासी होता जा रहा है और राजनीतिक प्रभुसत्ता संभाले व्यक्ति की शक्ति असीम होती जा रही है परन्तु चिंता की बात यह है कि राजनीति ने कुंती की तरह स्वयं ही अपनी आंखों पर पट्टी बांध रखी है और मानवीय मूल्यों को अनदेखा किया जा रहा है। तिस पर तुर्रा यह कि साधारण आदमी-विवशता कहें या आँखमूंद प्रवृत्ति से ग्रस्तता या स्वार्थ-चिंता या किसी अन्य कारण से आविर्भूत—ने उसे स्वीकार कर रखा है, वह उसका विरोध नहीं कर पा रहा। प्रस्तुत संदर्भ में रमेश गौड़ की लम्बी कविता 'एक मामूली आदमी का बयान' से उद्धरण लिया जा सकता है। वह लिखते हैं—

"स्कूल से लौटते एक बच्चे को मेरी आंखों के सामने ही/मांस के लोथड़े में तब्दील कर गयी झंडे वाली कार की इत्तिला भी मैंने पुलिस को नहीं दी थी/जी हां मुझे उस कार का नंबर और रंग और उसके पिछली सीट पर बैठे हुए व्यक्ति का चेहरा/और उसके बैठने का ढंग/सब कुछ-एकदम ठीक ठाक सभी कुछ/अभी तक ज्यों का त्यों याद है।"

रमेश गौड़ की चिंता यह है कि सड़क के किनारे बजरी कूटने वाले मजदूर को रोटी नसीब नहीं हो रही जबकि मंत्री का कुत्ता गोश्त खाता है। देश में हज़ारों डाक्टर बेरोजगार हैं जबकि अस्पतालों और चिकित्सा की अन्य सुविधाओं के अभाव में हज़ारों लोग मर रहे है। बेरोजगार इंजीनियरों की फ़ेहरिस्त भी लम्बी होती जा रही है, राजनीति ने हरेक व्यक्ति को बिकाऊ बना दिया है, उसकी कीमत लगा ली है। राजनीतिक प्रभुसत्ता या आर्थिक प्रभुसत्ता के लोभ ने जन शोषण की वृत्ति को बढ़ावा दिया है। भ्रष्टाचार घूसखोरी आदि ने राष्ट्रीय चरित्र का भरपूर हनन किया है। स्वार्थ प्रेरित राजनीति को सर्वग्रासी सिद्ध करते हुए कवि रमेश गौड़ ने आगे लिखा है :—

"और अक्सर तो यह भी हुआ है कि आप की तरह कुर्सी पर बैठा हुआ व्यक्ति/व्यक्ति नहीं मुझे एक बुझा पैना नाखून भर लगा है / नाखून जो किसी देश / और कभी जाति। और कभी धर्म / और कभी समाज और कभी व्यवस्था / और कभी शान्ति। और कभी कानून के नाम पर / मेरी गर्दन में घुंपता रहा है।"

इस तरह कविताओं में कवियों ने जनता की आस्था और विश्वास को भ्रमित करने वाले, उसे बरगला कर स्वार्थसिद्ध करने वाले, कुनबा पोषण की वृत्ति से ग्रस्त तथा कथित जन नेताओं पर कभी सीधे प्रहार किए हैं तो कभी उन पर व्यंग्य बाग छोड़े हैं। रमेश गौड़ ने आदमी की आंख मूंद वृत्ति पर व्यंग्य किया है। उस वृत्ति का मूल कारण है भारतीय मध्यवित (पैटी बुर्जुआ) व्यक्ति का अन्तः विभाजन। यह पैटी बुर्जुआ वर्ग मन से तो सर्वहारा के प्रति करुणासिक्त है, उसकी स्थिति को सुधरा देखना चाहता है, उसके प्रति दयालु है परन्तु कर्म के आधार पर वह स्वयं को उसके साथ नहीं जोड़ पाता। मुक्तिबोध की पीड़ा भी यही रही

है कि वह स्वयं को सक्रिय रूप से जन जीवन के साथ नहीं जोड़ पा रहा । उसी की तरह समकालीन लम्बी कविता के अन्य कवि भी मानते हैं कि जब तक राजनीति के फरेब बढ़ते रहेंगे मनुष्य, देश, विश्व का अंग-भंग होता ही रहेगा, आस्था, विश्वास, साहस और आत्मा का हनन होता रहेगा । कवि इस स्थिति पर चोट करता हैं—

"क्यों हर हाथ टूटा है ? / क्यों हर पैर कटा है ? / क्यों हर चेहरा मोम का है ? / क्यों हर दिमाग कूड़े से पटा है ? (कुआनो नदी; सर्वेश्वर दयाल सक्सेना)

समकालीन लम्बी कविता में इस स्थिति पर मात्र प्रश्न चिन्ह ही नहीं लगाए गए हैं बल्कि व्यक्ति को झिंझोड़कर खड़ा करने, उसे जागरूक बनाने के लिए लताड़ा भी गया है और व्यंग्यविद्ध भी किया गया है, जैसे—

"दिन दहाड़े उल्लू बोलते हैं, आदमी चुप हैं । खाइयों और गुफाओं में उजाला है। मैदानों में अंधेरा घुप है /बड़े खेत छोटे खेत को खा रहे हैं बीन बीन । शरीर पर लूट रहे देश, / आतमा विक रही है पैसे की तीन ।" (फिर वही लोग—रामदरश मिश्र)

कवि रघुवीर सहाय ने 'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता में आदमी के भीतर के इसी भय को, कमजोरी, कायरता को, स्वार्थ भीरूता को तोड़ने के लिए ललकारा है ताकि सत्ता का तिलिस्म टूटे । कवि इसके प्रति आस्थावान भी है :—

"कुछ होगा, कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा/न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अंदर एक कायर टूटेगा/टूट/मेरे मन टूट एक बार सही तरह" ।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने पँटी बुर्जुआ वर्ग पर 'कुआनो नदी' की कविताओं में व्यंग्य किये हैं तो तथाकथित जननेताओं की स्वार्थपरता पर भी चोट की है । वह यह मानकर चले है कि जनता जब जब परिवर्तन के लिए आंदोलित हुई है, जन नेताओं ने उसकी भावनाओं का अपने हित के लिए शोषण किया है 'कुआनों नदी' से पंक्तियां हैं :—

इस नदी में/न जाने कितनी बार बाढ़ आई है/रंगों में खून खौला है ।
पर हर बार अंगीठियों से तमतमाए चेहरों पर रोटियाँ ही सेंकी गई है ।"

इस तरह लम्बी कविताओं में समकालीन कवियों ने भारतीय राजनीति के छिद्रों को प्रस्तुत करते हुए जनता को इनके विरुद्ध जागरूक किया है । इस अर्थ में समकालीन लम्बी कविता विशेष रूप से सार्थक कविता है ।

कुल मिलाकर कहें तो यही कि लोकतंत्र में पूर्ण निष्ठा रखते हुए कवियों ने सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक-धार्मिक विसंगतियों के विरुद्ध जनमत तैयार करने का प्रयास किया है। लम्बी कविता ने व्यक्ति चेतना का परिष्कार करने के साथ-साथ सामाजिक विकास में व्यक्ति को अपनी भूमिका को सार्थक करने की प्रेरणा दी है । लम्बी कविता में अनुभवजन्य विचार की प्रमुखता के बावजूद कहीं कहीं भावावेग है, अंधा जोश है । ऐसे दृष्टि दोषों के बावजूद लम्बी कविता सार्थक रही है । सार्थक इसी अर्थ में कि लम्बी कविता में परिवर्तन-कामना और चेतना-परिष्कार आदि कविता की मूल संवदेना है, कविता शोषित, पीड़ित, आतंकित जन-जन की मुक्ति का आह्वान करने के लिए प्रतिबद्ध है। इस सत्य के बावजूद एक सत्य यह भी है कि कविता के माध्यम से कोई भौतिक क्रान्ति नहीं लाई जा सकती । जैसा कि धूमिल ने कहा भी है—तितली के पंखों में पटाखा बांधकर भाषा के हल्के में कोई गुल नहीं खिलाया जा सकता । फिर भी परिवर्तनकारी अनेक तत्वों में कविता एक महत्वपूर्ण तत्व रही ही है । और है भी कम से कम मानसिक स्तर पर परिवर्तन का भी बनाने का कार्य तो कविता करती ही है । इसी अर्थ में लम्बी कविता सार्थक है । शेष बहस के लिए खुला आमंत्रण तो है ही ।

जम्मू कश्मीर की हिन्दी कविता को देन

डा० अशोक जेरथ

जम्मू कश्मीर का हिन्दी कविता को योगदान या हिन्दी कविता की जम्मू-कश्मीर को देन—इनमें विरोधाभास होते हुए भी नहीं है—वस्तुत: कोई भी स्थान, प्रान्त अथवा जनपद साहित्य को क्या दे सकता है—मात्र परिवेश और वातास कि जो रचनाकारों को लिखने के लिए बाध्य करता है जो प्रेरणास्रोत हो सकता है। इस प्रान्त की भाषा कभी भी हिन्दी नहीं रही है—कश्मीर मे कश्मीरी और बाद में उर्दू का बाहुल्य रहा है तो जम्मू में डोगरी तथा उर्दू का। किन्तु इसके बावजूद हिन्दी पढ़ने वालों तथा हिन्दी रचनाकारों ने सदा ही अपना विशिष्ट स्थान बनाए रखा है। मेरे लिए यह एक सुखद आश्चर्य रहा है कि इस प्रान्त में सदियों पहले से हिन्दी-काव्य रचना होती रही है। कश्मीर की धरती देवभूमि के रूप में जानी जाती है—संस्कृत के अनेक आचार्यों ने यहीं पर अपने महान ग्रन्थों को रचा है और सदियों से ही श्रद्धालु कश्मीर की धरती की यात्रा करते रहे हैं जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बल मिलता रहा है। सिकन्दर (बुतशिकन) के समय (१२९० ई०) में अनेक कश्मीरी परिवार विशेषकर विद्वान और पंडित कश्मीर छोड़कर भारत के दूसरे प्रान्तों में बस गए पर बड़शाह के समय में श्रीभट्ट के प्रयासों से (१३२० ई०) वे दुबारा कश्मीर लौट आए। लगभग तीस वर्षों की अवधि में उन्होंने बिहार, उत्तरप्रदेश आदि प्रान्तों की भाषा तथा संस्कृति को अंगीकार कर लिया था—उस संस्कृति को वे अपने अपने साथ कश्मीर लेते आए। इन विद्वानों के साथ हिन्दी क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्वान और वैष्णव आन्दोलन के महत्वपूर्ण स्तम्भ रामानन्द जी भी कश्मीर आए जिन्होंने कश्मीरी हिन्दुओं के साहित्य और धर्म की पुनर्स्थापना का प्रयत्न किया। इस तरह कश्मीर में वैष्णव-भक्ति आन्दालन का आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन का आधार हिन्दी और कश्मीरी भाषा ही रहे। किन्तु लिखित हिन्दी काव्य हमें १७वीं शताब्दी के आस-पास ही मिलता है। रूप भवानी (१६२५-१७१९ ई०) १७वीं शताब्दी की एक महत्वपूर्ण रहस्यवादी कश्मीरी कवयित्री रही हैं, जिनकी रचनाओं में अनेक हिन्दी कविताएं बिखरी पड़ी हैं। अठारहवीं शताब्दी के अंत में (१७९१-१८७२ ई०) एक और भक्त कवि परमानन्द हुए हैं जिन्होंने अपनी कृति 'राधा स्वयंवर' में ब्रज, खड़ी बोली, पंजाबी और

कश्मीरी के मिश्रण से भाखा को जन्म दिया। इन्हीं के एक शिष्य नागाम जू बुलबुल ने। कुछ हिन्दी कविताएं रचीं। १९वीं शताब्दी में लाल जी जाडू ने तो प्रसिद्ध छन्दों – दोह चौपाई और सोरठा को अपनी रचनाओं में बुना।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के बाद तो बहुत-सी कश्मीरी प्रतिभाएं हिंदी में रच करने लगी थीं। श्री कृष्ण राज़दान (१८५०-१९२५ ई०), ठाकुर जू मानवटी, हलधर काचरू और पंडित नीलकण्ठ शर्मा (कश्मीरी रामायण के रचियता) कश्मीरी के साथ सा हिंदी में भी रचना कर रहे थे।

१९४१ में पंडित जिंदा कौल मास्टर जी, जो एक प्रसिद्ध सन्त कवि थे, अपनी 'पत्रपुष्प' नामक पुस्तक में पांच हिन्दी कविताएं प्रकाशित कीं। रूप भवानी द्वारा कश्मीरी मिश्रि हिन्दी का रूप देखें :—

संतोष समाद एक आसन पर
मैं यूं लगाया प्रेयम का पथ।
दृढ़ किया बालबाधों आंखियों का
ज्योति स्वरूप क्यों करूं मेरे से तेरे का
—श्री रूपभवानी रहस्योपदेश में से।

और बुलबुल नागामी (११वीं शताब्दी) द्वारा कश्मीरी मिश्रित हिन्दी में रचे काव्य क रूप देखे :—

गोविन्द नामा श्याम कलेवर निष्कान्ता
राय सुदामा गोपियन हिन्द विश्रामा।
योगी भोगी सत विचारी ब्रह्मचारी
क्षमाकारी कुछ त बुमा कुनि जोगा।

और १८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कश्मीरी कवि परमानन्द द्वारा रचित कुछ पंक्तिय देखें :—

भज गोविन्द भज गोविन्द नाम
और क्या काम श्याम भज गोविन्द नाम।
इस बानी का स्वाद पावे सत गुर का प्रसाद
सत गुरु का स्वाद पावे कोई होवे साध।

जम्मू में हिन्दी काव्य की सरिता आरम्भ में ही वेग से बही है। अठारहवीं शताब्दी तो मानो इस धारा का उत्थान काल था। जब अनेक कवि बृज भाषा में काव्य रचना कर रहे थे। किन्तु दुख और खेद का विषय है कि इस दिशा में कोई भी अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है। एक दो छुट-पुट लेखों के छोड़ किसी योजनाबद्ध प्रोजेक्ट को लेकर कार्य नहीं किया गया है।

कवि दत्त ऐसे प्रथम रचनाकार मिलते हैं जिनकी रचनाएं आज उपलब्ध हैं। १७७२ ई० में जन्मे भड्डू बिल्लौर निवासी कवि दत्त महाराजा ब्रजराज देव के सभा-कवि थे। इनकी तीन कृतियां उपलब्ध हैं—'महाभारत के द्रोणपर्व' का ब्रजछन्दों में भावानुवाद, 'ब्रजराज—पंचाशिका' और तीसरी रचना 'बारहमासा' है। इनकी मातृभाषा डोगरी थी। जम्मू कश्मीर राज्य अकादमी द्वारा इनकी तीनों रचनाएं 'कविदत्त ग्रंथावली' के नाम से प्रकाशित की गई हैं—वीरविलास की प्रारम्भिक पंक्तियां देखें :—

चरण कमल गुरु देव के विमल ज्ञान की षान।

निसि दिन दत्त हियँ बसैं दुरित की हाव ।
तिहि प्रसाद कविता करौं अपनी मत अनुसार ।
शब्द अर्थ चूके तहां कोविद लेहु सम्हार ।।

एक गांव शामाचक के नीलकण्ठ (१८५०-८५) जम्मू के पास रहने वाले थे। वे बाद में जम्मू नगर में ही मुहल्ला मस्तगढ़ में आ कर रहने लगे। इनकी प्रथम रचना 'वंशावली'— में डोगरा राजवंश का महाभारत काल से अपने आश्रयदाता महाराज रणवीर सिंह के काल तक का इतिहास हिन्दी में लिखा है। कवि की दूसरी रचना 'कीर्ति-विलास' है जो सन् १८८६ में विद्याविलास प्रेस में प्रकाशित हुई थी। इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा रणवीर सिंह के गुणों का बखान किया गया है। एक रूप देखें :—

वरणों रघुकुल मेव सेव सेवक बरदाई,
त्रिकुटा श्री परमेश्वरी भैड़ कालिका माई।
नीलकंठ कवि ज्यों कहै श्री रघुनाथ सहाई,
मिल पाँचों रक्षक भए केवल रघुकुल माहिं।

इनके अतिरिक्त 'रणवीर रत्नमाला', 'रणवीर भाषा प्रकाश,' 'सार संग्रह,' 'कीर्ति-विलास' तथा 'त्रिकुटा रहस्य' अदि अनेक रचनाएं आज उपलब्ध नहीं हैं पर इनका उल्लेख ग्रंथों में मिलता है।

पंडित छन्नूलाल का जन्म १८०८ ई० में उधमपुर में हुआ था। इन्होंने कान्चनाचार्य के लिए 'धनंजय विजय' नाटक (व्यायोग) का हिन्दी ब्रजपद्यों में अनुवाद किया है जो विद्या-विलास प्रेस से प्रकाशित हुई।

उन्नीसवीं शताब्दी में ठा० मीहरासिंह द्वारा रचित हिन्दी कविता 'भक्ति विनोद' श्रीनगर के राजकीय पुस्तकालय में उपलब्ध है। राजेन्द्र प्रसाद द्वारा ब्रज पद्य में रचित 'नाम लीला' की पाण्डुलिपि अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसी शृंखला में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र का नाम आता है जो जम्मू से लगभग चालीस किलोमीटर दूर साम्बा नामक स्थान के निवासी थे। १८६० ई० में जन्मे दुर्गाप्रसाद का जीवन बंगाल, बिहार और काशी में ही बीता। वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पादित पत्रिका 'कवि वचन सुधा' से सम्बधिन्त थे। इसके इलावा पटना से 'बिहार बन्धु' तथा अन्य अनेक साहित्यिक पत्रिकाएं और समाचार पत्र निकालते रहे—भारतमित्र, सार सुधानिधि, उचित वक्ता आदि। समय-समय पर स्वरचित कविताएं भी इन पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित करते रहे। मिश्र जी ने बीस पुस्तकें लिखी हैं। १९वीं शताब्दी के अन्त में एक और नाम गांगेय नरोत्तम शास्त्री का हिन्दी प्रचार-प्रसार के साथ लेखन में जुड़ा है। गांगेय नरोत्तम शास्त्री मूलरूप से कवि थे। वे कलकता में बस गए थे। नरोत्तम शास्त्री द्वारा रचित लगभग ३६ रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

उपरिलिखित रचनाकार वे हैं जो प्रकाश में आ चुके हैं परन्तु एक काफिला उन लोगों का भी है जिन्हें अभी तक हिन्दी जगत नहीं जानता। हिन्दी काव्य की ऐसी अनगिनत पाण्डुलिपियां दबी पड़ी हैं—१९सवीं शताब्दी में हिन्दी में न्याय सिद्धांत का पद्यानुवाद गंडा सिंह ने किया था जो महाराजा रणवीर सिंह के समकालीन थे। डिमाई आकार में ४६८ पत्रों की यह पाण्डुलिपि चमकीले मटियाले कागज पर काली स्याही से लिखी गई है। ये वजीराबाद के थे और जम्मू आकर बस गए थे।

इसी प्रकार 'वैराग्यशतकम्' का हिन्दी पद्यानुवाद हरदयाल नामक किसी कवि ने १९७७ ई० में किया। हरदयाल ने दोहा कवित, सवैया, सोरठा आदी छन्दों को बहुत सुन्दर

ढंग से अपनी रचना में बुना है। संस्कृत अनुसन्धान पुस्तकालय, रघुनाथ मन्दिर में 'सुधन्वा कथा' की हिन्दी के पद्यों में रचित पाण्डुलिपि पड़ी है जिसकी रचना सन् १७८४ ई० में हुई थी पर इसके रचयिता का कोई पता नहीं। इसी प्रकार 'आदि ग्रन्थ'—हिन्दी पद्यों में रचित पाण्डुलिपि के रूप में पड़ा है जिसके रचनाकार का कोई पता नहीं। रतनमाला, रत्न परीक्षा, सारगीता, उचाटन विधि, नारायण लीला, रघुवंश, राम अर्चन चन्द्रिका, त्रिशंकु की व्याख्या, गोहीरतविधि, गर्वगीता आदि बीसियों ग्रंथ पाण्डुलिपियों के रूप में उपलब्ध हैं जिनका निर्माण काल अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दी रहा है—पर इनके रचनाकारों का कोई पता नहीं। ये पाण्डुलिपियां अधिकतर ब्रज मे ही रचित हैं। दोहा, कवित्त ओर चोपाई छन्दों का प्राय: प्रयोग किया गया है।

आधुनिक काल

इस शताब्दी के चालीसवें ओर पचासवें दशक में तो अनेक प्रतिभाएं उभरीं। 'हिन्दी साहित्य मण्डल' तथा 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' में कार्यरत लगभग सभी हिन्दी-प्रेमी कविताएं रचते थे। स्व० बंसी लाल सूरी, सुश्री शान्ता भारती, सुश्री शकुन्तला सेठ, स्व० रमाकान्त भारद्वाज और बाद में इसी शृंखला में प्रो० सुभाष भारद्वाज, शंकर शर्मा पिपासु, स्व० चन्द्रकान्त जोशी आदि हिन्दी कवियों ने जम्मू के साहित्यिक वातावरण को मुखरित किया। पचास के दशक में ही हिन्दी कविता लिखने और कवि सम्मेलनों में उन्हें पढ़कर श्रोताओं को आत्मविभोर करने मे सिद्धहस्त दो युवा कवि वेदपाल 'दीप' और 'मधुकर' कालान्तर में डोगरी की और पूर्णतया समर्पित हो गए। 'मधुकर' द्वारा रचित नर्तकी और 'दीप' द्वारा रचित शल्या आज भी अपनी स्वर लहरियों को लिए हुए जीवन्त हैं।

स्वतन्त्रता के बाद तो इस अहिन्दी क्षेत्र की हिन्दी कविता का मानो रेनासां का पिरियड था। अब कुल देश की कविता के साथ साथ यहां का कवि चल रहा था। कथ्य और शिल्प में जहां राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश धीरे-धीरे पैठ पाने लगे थे वहां इस अंचल की खुशबू भी इन रचनाओं में मुखरित होती रही है। कश्मीर मे मोहन निराश, शशिशेखर तोषखानी, रतनलाल शान्त, पृथ्वी नाथ 'पुष्प', तथा पृथ्वी नाथ 'मधुप' जैसे प्रौढ़ कवि अपनी पहचान स्थापित करने लगे थे वहां जम्मू में तो एक कारवां उमड़ पड़ा था—प्रो० सुभाष भरद्वाज, चन्द्रकान्त जोशी, शंकरशर्मा पिपासु, सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्, ओम प्रकाश गुप्त, मन्साराम शर्मा चंचल, गंगादत्त विनोद, ज्योतीश्वर पथिक आदि अपनी आवाज़ काव्य के माध्यम से मुखरित कर रहे थे। इसी शृंखला में बाद में रमेश मेहता, निर्मल विनोद, उषा व्यास, जवाहर रैणा, बलनील देवम्, नाहर, अशोक कुमार, आदर्श और अशोक जेरथ आदि कुछ ऐसे नाम हैं जिन्होंने न केवल नई कविता की जम्मू में नींव रखी अपितु कुल देश की कविता के साथ अपनी पहचान स्थापित करने मे समर्थ रहे।

आज इनकी रचनाएं सन्दर्भों के तौर पर उद्धरित की जाती हैं। राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाएं इन कविताओं को सहर्ष छापती हैं। राष्ट्रीय स्तर के कवि सम्मेलनों मे इन्हें बुलाया जाता है ओर अनेक ऐसे अवसरों पर ये कवि प्रशंसित हो चुके हैं। कश्मीर में मोहन निराश, शशिशेखर तोषखानी, रतनलाल शान्त, अग्निशेखर, उपेन्द्र रैणा और महाराज कृष्ण सन्तोषी इस सन्दर्भ में ऐसे नाम हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान स्थापित की है।

इस प्रांत की हिन्दी कविता के प्रोत्साहन में अनेक संस्थानों तथा स्वायत्त संस्थाओं ने अपना योगदान दिया है। रेडियो कश्मीर के तीन केन्द्रों जम्मू, कश्मीर और लेह से हिन्दी

कार्यक्रमों के माध्यम से, राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर के कवि सम्मेलनों के माध्यम से और देश के प्रबुद्ध कवियों को आमन्त्रित कर उनकी रचनाओं के प्रसारण से होने वाले आदान प्रदान के माध्यम से तथा गीत, संगीत आदि के लिए स्थानीय कवियों से रचनाएं लिखवा कर उन्हें प्रोत्साहन दिया गया है। जब अकादमी अभी उभर कर सामने नहीं आई थी, आकाशवाणी के यही केन्द्र इस कमी को पूरा कर रहे थे।

इस संदर्भ में जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी की भूमिका महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय रही है। 'शीराज़ा' हिन्दी पत्रिका में स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर के कवियों की अभिव्यक्ति को इसने मुखर किया है। 'शीराज़ा' तथा 'हमारा साहित्य' के कविता विशेषांक प्रकाशित कर, काव्य संग्रहों तथा संकलनों के प्रकाशन में आर्थिक सहायता दे कर तथा उन्हें पुरस्कृत कर हिन्दी कविता को प्रोत्साहित किया है। कवि सम्मेलनों और परिचर्चाओं के माध्यम से भी काव्यमय वातावरण बनाने में सक्रिय योगदान अकादमी देती रहा है।

जम्मू-कश्मीर सूचना विभाग 'योजना' और 'जम्मू कश्मीर समाचार' प्रकाशित कर इस क्षेत्र में अपना योगदान दे रहा है। इन पत्रिकाओं में स्थानीय कवि छपते रहते है।

कश्मीर तथा जम्मू के विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग हिन्दी कविता पर शोध करवा कर अपना योगदान दे रहे हैं। कश्मीर से 'वितस्ता' और जम्मू से 'मन्तव्य' नामक पत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं। इस सिलसिले में कश्मीर विश्वविद्यालय हिन्दी काव्य में शोधरत अनुसंधित्सुओं के निरन्तर प्रयास से क्षेत्रीय हिन्दी कविता को समझने, पहचानने और उसका विश्लेषण करने में बहुत बड़ा योगदान दे रहा है—डा० रमेश कुमार शर्मा और डा० अयूब प्रेमी का इस प्रयास में सतत्-योगदान प्रशंसनीय है।

स्वयंसेवी हिन्दी संस्थाओं द्वारा हिन्दी कविता के प्रचार-प्रसार और अभिव्यक्ति के लिए सशक्त मन्च प्रदान किए गए हैं—स्वतन्त्रता से पहले जम्मू में 'हिन्दी साहित्य मण्डल' और 'हिन्दी प्रचारिणी सभा के सतत् प्रयासों से हिन्दी कविता को एक दिशा मिली है तो कश्मीर में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', 'महावीर दल' तथा दूसरी संस्थाओं का योगदान भुलाया नहीं जा सकता।

जम्मू-कश्मीर जैसे अहिन्दी भाषी क्षेत्र में कविता के प्रोत्साहन के लिए पत्र-पत्रिकाओं का सक्रिय योगदान रहा है। यह एक सुखद आश्चर्य है कि बीसियों हिन्दी पत्रिकाएं यहां पनपी हैं और इन पत्रिकाओं में देश के रचनाकार प्रकाशित होने में गौरव महसूस करते रहे हैं।

जम्मू से दीपक, जम्मू प्रकाश, वसुधा, भारती, उषा, विद्याविलास, रणवीर, साक्षर, प्रतिभा, योजना, मधुरिमा, निस्तन्द्र, घोषवती, शीराज़ा, धर्ममार्ग, सवेरा, समर्थन, हमजोली, जम्मू पत्रिका आदि हिन्दी पत्रिकाएं और समाचार पत्र प्रकाशित होते रहे हैं, हो रहे हैं। साईंस कालेज द्वारा प्रकाशित 'तवी' पत्रिका का अपना इतिहास रहा है। भारती और उषा पत्रिकाओं में प्रभाकर माचवे, मोहन राकेश, सोहन लाल द्विवेदी, रामकुमार वर्मा, गोपाल सिंह नेपाली, हरिवंश राय बच्चन जैसे समर्थ रचनाकार प्रकाशित होने में गौरव महसूस करते थे। इसी प्रकार कश्मीर से कश्यप, प्रकाश, चन्द्रोदय, महावीर, नीलजा आदि पत्रिकाएं छपती रही है। विशेष काव्य संकलनों—एक अपरिचित आकाश, चोराहे पर खड़े बारह चेहरे, शीराज़ा, नीलजा, वितस्ता, मधुरिमा और निस्तन्द्र के कविता विशेषांकों ने इस ओर विशेष योगदान दिया है।

आज देश की कुल हिन्दी कविता के साथ साथ कन्धा मिलाए जम्मू-कश्मीर की हिन्दी

कविता चल रही है। राष्ट्रीय स्तर की चर्चित पत्रिकाओं, संकलनों और हिन्दी समाचार पत्रों के साहित्यिक संस्करणों में यहां के रचनाकार अपनी सशक्त रचनाओं के माध्यम से देश भर के हिन्दी पाठकों को विभोर कर रहे हैं। अहिन्दी भाषी क्षेत्रीय कुण्ठाओं को कुचलकर ये रचनाकार निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर हैं। केवल प्रकाशित होने की बात नहीं, इनकी रचनाओं में वह पैना स्वर और मुखर तेवर है जो किसी भी कवि की रचना से पीछे नहीं। कुछ उदाहरण देखें :— 'कादम्बिनी' में प्रकाशित उषा व्यास की रचना :—

पावस सांवरी ने छितरा दी
गीले गेसुओं की गन्ध गुंथी छाँव
धीरे धीरे धीरे झील के उस पार
थिरकने लगी है
बतख-सी पाल उड़ाती नाव

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में छपी रमेश मेहता की रचना की कुछ पंक्तियां देखें :—

चुगलखोर हवाओं ने
हर बार चुपके से कहा है
कि तुम्हें। इस घर की दहलीज के पार आना
एक व्यर्थ का प्रयत्न लगता है
ऐसे में द्वार खुला मिले या बन्द
तुम्हीं कहो इससे क्या फर्क पड़ता है।

'हिन्दी एक्सप्रेस' में छपी बलनील देवम् की कविता की पंक्तियां देखें :—

मैं कविता में जब देश के दर्द की बात कहता हूं
लोगों को यह बात बहुत अच्छी लगती है
लोग वाह-वाह करते हैं और समीक्षा करते
अपनी दुनिया में लौट जाते हैं
देश का दर्द अपनी जगह कायम रहता है।
लोग मेरी अगली कविता की प्रतीक्षा करते हैं
यह सोचते हुए कि देश का दर्द
और शिद्दत के साथ उभर कर आएगा।

और मोहन निराश 'संचेतना' में :—

बन्द करो बाहर के द्वार
भीतर का मौसम है सिरफिरा
खिड़की के द्वारों तक
राहें ही राहें हैं। जेबों में टांगें हैं
चलने को बांहें हैं
कांख में मुखौटे हजार
अपना यह चेहरा खुरदुरा
भीतर का मौसम है सिरफिरा।

और निर्मल विनोद के गीत का स्वरूप देखें जो 'उत्तर प्रदेश' में प्रकाशित हुआ था:—

आ पहुंचे चीड़ वन
दूर कहीं छूट गईं

पीछे अमराइयां
अलसाई सी लगतीं अपनी परछाइयां
राह यह घुमावदार
सीधा-सा अपना मन
आ पहुंचे चीड़ वन
आड़ी-टेढ़ी
सर्पिल सांवली पहाड़ियां
उलझी-सी बिखरी-सी
कण्टीली झाड़ियां
मटमैले धूल सने
झाड़ों ही के आंगन
आ पहुंचे चीड़ वन।

और इन पंक्तियों के लेखक की एक कविता के अंश प्रस्तुत हैं जो 'कादम्बिनी' में प्रकाशित है :—

टेरेस की आगाश में
ठण्डक बैठ गई है
धूप की तपश को किस ने सहला दिया है
अनछुई कलियों के रंग फीके पड़ गए
मल-मल कर उन्हें किसने नहला दिया है
टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरा है आकाश
जखमों को इसके किसने फैला दिया है।

इस तरह हम देखते हैं कि राष्ट्रीय स्तर पर जम्मू कश्मीर के इन रचनाकारों ने अपनी पहचान बनायी है। यह तो अभी आरम्भ है और भी मील पत्थर हमें मिलेंगे इसी आशा के साथ ...!

:———:

तीन कविताएं

चेहरा

ज्योत्स्ना मिलन

झन्न से टकराया
आईना,
सामने के पत्थर से
चूरचूर
होना ही था
हुआ,
राहत से देखा
समूचे आसपास को
अपना चेहरा
दिखाई नहीं दिया उसे
कहीं भी
चकनाचूर हो गया होगा
वह भी आईने के साथ साथ
और फिर
वह
मेरा था भी तो नहीं।

पेड़ : १

पेड़ की निरीहता का फायदा उठाकर
वे जोर जोर से
हिला रहे थे

उसे
और भूल गए थे
कि वे
पेड़ से भी ज्यादा हिल रहे हैं
लेकिन पेड़
ऐसे मगन था
जैसे
झूम रहा हो
अपनी ही मस्ती में।

पेड़ : २

इस कदर मटमैले
और बदरंग थे
करीब करीब
तमाम पेड़
कि वह एक
हरा कच्चा आम
अविश्वसनीय–सा लगा
और मैं मनाती रही
सारे वक्त
कि वह
सचमुच
एक हरा पेड़ साबित हो।

दो कविताएं

तुम्हारी तलाश में

डा० उपेन्द्र रैणा

मेज़-कुर्सी कोई सम्बन्ध नहीं
जीवित होने की गवाही दे सकते हो ?
'कान से कर्ण जन्मा है'—तथ्य को
ग़लत साबित करने के जुर्म में
तुम्हें इस सदी की पीठ पर गोली मार दी गई
फिर भी इतिहास तुम्हें मृत घोषित
नहीं कर सकता
तुम लड़ोगे
निहत्थे लड़ोगे
यह नीयत तुम्हारे रक्त में हैं
रक्त बहाने में नहीं
यह जानते हुए भी
तुम्हारा भाग्य-चक्र घूमता रहा
उसी मानव के इर्द-गिर्द
जो हमेशा तुम्हारी तलाश में
हर युग में जन्मता रहा
तुम्हारे साथ-साथ

जंगल आस-पास है

लोगों की आंखें लाल हैं
जल रहा है नगर पूरा का पूरा
आग लगी कहीं
किसी जंगल में आस-पास है
अपने घरों से बाहर आए लोग
खड़े-खड़े उदास हैं
कि कहीं किसी घर में
रह रहा कोई मानव
आदि काल से ही शापग्रस्त है
शहर देखा नहीं अभी तक उसने
न शहर के लोग,
न भीड़, न एक लम्बी सड़क
न सुनी हैं चीखें
जो उसकी भाषा को पत्थर बना देती हैं

दरअसल यह मानव
असभ्य है
अनभिज्ञ है
आदमी और जानवर को एक जैसा समझता है
उसकी भाषा में कहीं भी
सूर्य की परिभाषा नहीं है
इसलिए हर सूर्योदय
उसके लिए एक भयंकर आग है
रात उसके लिए कहीं पर भी
कोई अंधेरे का टुकड़ा है
जिसे ओढ़कर वह
अगली पीढ़ी के लिए
अपने को सुरक्षित रखता है।

:———:

व्यंग्य

संभावना का गणित

लतीफ घोंघी

आपको यह जानकर हार्दिक दुःख होगा कि मैं संभावना प्रेमी आदमी हूं। आदमी इसलिये कि लेखक हूं और लेखक चाहे भले कुछ भी न हो आदमी तो होता ही है। आदमी इसलिये कि वह बीमार पड़ता है और सरकारी अस्पताल जाता है। आदमी इसलिये कि वह राशन की लाईन में खड़ा होता है। आदमी इसलिये कि वह आबादी बढ़ाने में अपना सक्रिय योगदान देता है। ये सारे गुण मुझमें हैं। आदमी होने के लिये इससे अधिक गुणों की जरूरत भी नहीं पड़ती अपने यहां।

पिछले दिनों एक कवि मित्र बीमार पड़ गये। अस्पताल में भरती भी हो गये कवियों के साथ भी संभावना जुड़ी हैं, यह मुझे उस समय पता चला था जब बाजपेयी जी का काव्य संग्रह "शहर—अब भी संभावना है" प्रकाशित हुआ था। यह मात्र संयोग ही था कि यह संग्रह पढ़ने के बाद ही मेरे कवि मित्र बीमार हुए थे। वे साहित्य में सक्रिय तत्व थे। अस्पताल से बैठे बैठे ही अनेक साहित्य समितियों को पत्र लिख दिये कि मुख्यमन्त्री से अपील करो कि मुझे इलाज के लिये पैसे दें। अपने यहां के कवियों में कम से कम यह सद्भावना तो बाकी है कि वे बीमार पड़ने वाले कवि को आदर की नजर से देखते हैं। धड़ाधड़ पत्र पहुंचने लगे मुख्यमन्त्री जी के पास। एक हजार रुपया फेंक दिया मुख्यमन्त्री ने राहत कोष से। कवि मित्र अच्छे हो गये और भिड़ गये कविता के पीछे।

इस एक हजार की संभावना ने मुझे बहुत आकर्षित किया। लेकिन यह तो हिन्दी व्यंग्य साहित्य और मेरा दुर्भाग्य था कि मैं बीमार नहीं पड़ा। कई दोस्तों से पूछा—यार बीमार पड़ने का कोई तरीका बताओ... जिस कवि ने पच्चीस कवितायें नहीं लिखीं वह एक हजार पा गया और हम यहां लिख-लिख के मर गये और कुछ भी नहीं मिला।

मित्र बोले—देशी घी और शुद्ध दूध मिलाकर पियो तो तुरंत बीमार हो जाओगे।

मैंने पूछा—कहां मिलेगा भईया ?

वे बोले—अपने देश में मिलना तो मुश्किल ही है। विदेश से मंगवा लो।

मुझे निराशा हुई कि छोटी छोटी चीजों के लिये भी हमें विदेशों पर आश्रित रहना पड़ता है। बीमारी के लिये भी शुद्ध माल यहां नहीं मिलता। अपनी आत्मनिर्भरता का दावा कितना खोखला है। अब बेचारा लेखक कैसे एक हजार रुपया प्राप्त करे।

मुख्यमन्त्री तो सभी साहित्यकारों को आमंत्रित कर रहे हैं—बीमार पड़ो और हमारे सहायता कोष से रुपया भुना लो। जिनका पव्वा है वे बीमार पड़ रहे हैं और साहित्य सृजन भी कर रहे हैं। अर्थ-लाभ की संभावना साहित्यकार को साहित्य से जोड़ कर रखती है। मेरी तरह अनेक लेखक हैं जो केवल इसलिये लिख रहे हैं कि कभी वे बीमार पड़ेंगे तो हजार दो हजार रुपया पा जायेंगे।

जब मैंने घर में बताया कि आजकल अपने प्रदेश में लेखकों की इज्जत बढ़ गई है तो घर वाले बहुत खुश हुए। श्रीमती जी ने कहा—जब तुम्हें हजार रुपया मिलेगा तब मैं पांच फकीरों को खाना खिलाऊंगी। खुदा करे तुम्हें जल्दी रुपया मिल जाये।

लेकिन मुझे लगता है कि मेरे बीमार होने की संभावना नहीं है। आपको शायद याद होगा कि मेरा एक व्यंग्य संग्रह "बीमार न होने का दुःख" प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह के पीछे भी मेरी मूल भावना यही थी। यह बात मैंने किताब की भूमिका में नहीं लिखी क्योंकि यह मेरे देश के व्यंग्यकारों की इज्जत का सवाल था। लिख देता तो लोग समझते कि हम लेखक लोग हजार दो हजार रुपयों के लिए मरे जा रहे हैं। चाहे कुछ भी हो हिन्दी साहित्य मे अपना ठस्का कम नहीं होना चाहिये।

यह किस्सा उन्हीं संघर्ष के दिनों का है जब मैं बीमार होने के लिये जी तोड़ संघर्ष कर रहा था। भजिया, आलूगुंडा, समोसा, सब खा रहा था। बाजार जाता और सड़ी सब्जी लाता। उसे उबाल कर खाता। अस्पताल जाता और पूछता कि टी बी. का मरीज कौन है? जिसे टी. बी. होती मैं उसके साथ कई घण्टों रहता, लेकिन दुर्भाग्य ने मेरा पीछा नहीं जोड़ा। जिसकी किस्मत में मुख्यमन्त्री कोष का पैसा लिखा होता है उसे ही मिलना है। अब तो हालत यह थी कि साहित्यकार मित्र मेरे मुंह पर थूकने लगे। कहते—शरम नहीं आती साहित्य सेवा कर रहे हो? व्यावस्था को गाली देते हो और कहते हो व्यंग्य लिख रहा हूं? देश की राजनीति को बदनाम करते हो? अब पड़ो ना साले बीमार और लेलो हजार दो हजार। कौन रोकता है तुम्हें?

देखिए, इस एक हजार की संभावना ने मुझे साहित्य में कितना जलील किया।

एक दिन थोड़ा बुखार आया तो मैं प्रसन्न हो गया। सोचा - पक गया एक हजार। सीधे भागा सरकारी अस्पताल। डाक्टर से बोला—मुझे भरती कर लो डाक्टर साहब... मेरी इज्जत का सवाल है।

डाक्टर ने मुझे देखा। उन्हें पहली बार पता चला कि इस देश में लेखकों की भी इज्जत होती है। उन्होंने पूछा—इज्जत का सवाल कैसे?

मैंने कहा—हम सीधे मुख्यमन्त्री से जुड़े हैं।

मेरा यही कहना मेरे लिये घातक सिद्ध हो गया। मुखमन्त्री का आदमी समझकर उन्होंने मुझे अपनी प्रायव्हेट बैग में रखा एक इन्जेक्शन भी मुफ्त में लगा दिया, केप्सूल भी दे दीं और कहा- चिंता की कोई बात नहीं...मामूली हरारत है। दो घण्टे में आप बिल्कुल स्वस्थ हो जायेंगे। भरती होने की बिल्कुल नौबत नहीं आयेगी।

मेरी आत्मा ने मुझे धिक्कारा। कहा जा मर साले ..और होशियारी दिखा अपनी...।

कहने का मतलब यह कि अब डाक्टरों के स्नेह की भी कोई संभावना नहीं रही। मेरी जगह दूसरा कोई होता तो पचास का एक नोट फेंक देता और भरती हो जाता अस्पताल में। साढ़े नौ सौ रुपयों के फायदे में तो रहता।

मेरी किस्मत में हजार रुपया नहीं था। मुझे आज तक नहीं मिला।

पिछले तीन सालों से प्रदेश ने एक बड़ी संभावना फेंक दी लेखकों के सामने। हजार दो हजार छोड़ो...पच्चीस हजार लो एक मुश्त। शिखर सम्मान पा जाओ...बाल बच्चे खुश रहेंगे...फिर मत कहना कि सरकार ने लेखकों के लिए कुछ नहीं किया।

अब संभावना का स्तर पच्चीसगुना ऊपर उठ गया। कई लेखक खांस रहे हैं, लेकिन बीमार नहीं पड़ रहे हैं और न ही मर रहे हैं। उनको रोग निरोधक शक्ति तगड़ी हो गई है। हर साल रास्ता देखते हैं कि इस बार उनका नाम आ जायेगा शिखर सम्मान के लिये। इसी संभावना में जी रहे हैं। संभावना का यह गणित देश के साहित्य को जीवित रखता है। मेरी रोग निरोधक शक्ति तो वैसे भी बहुत अच्छी है जिसका उदाहरण मैंने आपको बता दिया है। इस सम्मान के पीछे और कोई भावना हो या न हो साहित्य को जीवित रखने की भावना तो है इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

मैंने फिर घरवालों को बताया कि अब लेखकों की इज्जत अधिक बढ़ गई है और लेखकों को भी पच्चीस हजार रुपया मिल सकता है। तुम लोग मुझे जरा अच्छा खाना खिलाया करो क्योंकि मुझे अभी कुछ सालों तक जीना पड़ेगा। घर वालों ने कहा—जो रूखा-सूखा घर पर मिलता है उसे खाकर जीना है तो जियो...आगे तुम्हारी मर्जी।

संभावना आदमी को जीवित रखती है। और जैसा कि मैंने पहले कहा है कि मैं आदमी हूँ, इसीलिये आज तक जी रहा हूँ। मेरी रोग निरोधक शक्ति चाहे जैसी हो लेकिन पच्चीस हजार की संभावना का इसमें पूरा योगदान है, और इसे नकारना भारतीय व्यंग्य साहित्य को नकारना होगा।

कश्मीरी कहानी

पीड़ा

अवतार कृष्ण रहबर

वह रोज़ की तरह गम्भीर था। खोया खोया। उसकी एक नज़र जल की ओर थी और दूसरी यारबल (पनघट) की निचली सीढ़ियों की ओर। वितस्ता का पानी घिसट-घिसट कर बह रहा था। इस में न वह नीला रंग था और न वह प्रवाह, जो उसने प्राय: इस मे देखा था। खासकर बचपन और जवानी में, जब वह "स्कूल" तथा कालिज जाते साथियों और मित्रों के साथ जेहलम के आर पार तैरता था तो भागती जल की नृत्यमय गति उसे एक विचित्र आनन्द देती। पर आज न वह नृत्य था और न ही उसी का वह गतिमय प्रवाह !

यह जल उसकी बहुत बड़ी कमज़ोरी था। मिशन स्कूल का छात्र होने के कारण उसने तैराकी के कई मुकाबलों में भाग लिया था। अमीराकदल से 'वीर' तक वह चपचपाता हुआ भरे बोरे की तरह बहता। उस ने 'वुलर-क्रास' भी किया था और इसके लिए उसे एक एक मेडल भी मिला था। 'यारबल' उसे अपने आंगन-सा लगता। वह घण्टों पनघट की 'देवरी-सिलों पर नंगे बदन धूप सेंकता और फिर एक ही गोता लगा कर देर तक पानी के नीचे लम्बे सांस लेता और कुछ देर बाद फतेहकदल के मुहल्लों की गृहस्थ स्त्रियां और अनब्याही लड़कियां जब पनघट पर कपड़े धोने आतीं तो वह हैरानी से तब तक वितस्ता की ओर टकटकी बांधे देखती रहतीं जब तक वह किसी जगह से बाहर न निकल आता। इसके बाद वह लकड़ी के छोटे लट्ठे से कपड़ों को पीटते हुए लम्बी तान बिखेरती। उसे यह सब कुछ याद आ गया। उसने दूसरा सिगरेट जलाया। वह निचली सीढ़ियों की ओर फिर प्यार से लगातार देखने लगा, जहां प्राय: स्त्रियां कपड़े धोने बैठती थीं। यही वह सीढ़ियां थीं जिन्होंने उसे अचानक बेसुध कर दिया था। और वह मूरत भी फिर उस हाथ न आई।.......जीवन के कितने पन्ने उसकी आंखों के सामने आये, जिन्हें वह सिगरेट के लम्बे कशों के धुएं के साथ घुमाता हुआ हवा में जज्ब करता गया। "यह समय भी कैसे अपना ताना बाना बुनता है"—वह सोचने लगा। "मनुष्य विवश है चिन्ताओं और हादिसों के पिंजरे में, बन्द, लाचार, मजबूर"......। वह बराबर सोचता रहा पर कुछ समझ में

नहीं आ रहा था। कहां से कथा का आरम्भ हुआ और कहां दास्तान पहुंची।

उपमहाद्वीप के विभक्त होते ही कश्मीर मे आपत्कालीन स्थिति उत्पन्न हुई थी औ वह इसी में फंसकर रह गया था। पिता मुजफ्फराबाद में नौकरी करते थे और मां भी वहीं थी। वह यहां अपने चाचा के पास रहता था। वह बी० एस-सी० की परीक्षा में बैठ चुका था और माता-पिता के आने की प्रतीक्षा कर रहा था ताकि वह अपना आगे का कार्यक्रम बना सके। परन्तु न मां ही आई और न पिता। उनका तो राख के ढेर पर कौआ तक न मिला। कई बातें कही गई पर सत्य प्रभु ही जानता है। विवश, बेकार परेशान होकर वह बम्बई भाग गया। यहां से वह गोवा, जो उन दिनों पुर्तगालियों की ए बस्ती थी, पहुंचा। वहां से लिस्बन और लिस्बन से अमरीका।

यह सब एक लम्बी कहानी है जिसे "सरशार" ही "फसानै-आजाद" बना सकता है। किन्तु यह कथा तब तक अपूर्ण रहेगी जब तक कि प्रोफेसर बर्नार्ड का चरित्र इसमें सम्मिलित न किया जाए। प्रोफेसर बर्नार्ड इन्डालोजी का ज्ञाता था। उसे उपमहाद्वी हिन्दुस्तान की प्रत्येक वस्तु का न केवल ज्ञान था अपितु उसके प्रति एक विशेष प्रेम औ लगाव भी था। चाहे कश्मीर हो या द्रविड़; हड़प्पा हो या मोहंजोदडो; बंगाल हो या पंजाब वह उसकी ओर देख कर कहता :—

"O" Beautiful man from a beautiful land ... land of see and saints"'' (ओ......एक सुन्दर देश का सुन्दर व्यक्ति...ऋषियों और सन्त का देश......।)

प्रोफेसर बर्नार्ड ने उसका जीवन बनाने में बड़ी सहायता की। त्रिलोकीनाथ अ प्रोफेसर त्रिलोकीनाथ बन चुका था। उसकी गणना प्रसिद्ध और नामवर प्रोफेसरों में हो थी। उस ने अमरीकी नागरिकता ग्रहण की थी और अब वह न्यूयार्क में ही रह रहा था उसके पास सब कुछ था—नाम, मान, धन, प्रसिद्धि—जो एक व्यक्ति के पास होना चाहि। किन्तु यह भी सही था कि वह हज़ारों सुख सुविधाओं के होने पर भी एक विचित्र प्रका के सूनेपन और पिपासा का अनुभव कर रहा था। यह वितस्ता, उसका जल ..कश्मीर कश्मीर का आस पास, अपना स्कूल, अपना मुहल्ला, अपना यारबल (पनघट), कश्मीरी संगीत, छतों की बर्फीली गांठें याद आते ही उसका मन अधीर हो उठता। यही अधीरता उसे समय-समय पर कश्मीर आने के लिए आमादा करती। वह महीना डेढ़ महीना यहां रह कर फिर अमरीका वापिस चला जाता। अब उसका चाचा आदि भी यहां न थे। उसके पुरखों की जगह एक ग्वाले ने, जिसने उसे अपने बच्चे की तरह पाला था, खरीद ली थी। जब वह आता तो अवश्य ही अपने घर जाता। आस पास के गली-कूचों में घूमता और पनघट पर घण्टा, दो घण्टे गुजारता, नहाता और अपनी यादें जगाकर वापिस चला जाता। समदू ग्वाले के साथ घण्टों बातें करने में उसे मज़ा आता। 'समद जू' का हृदय उसे देखकर उसी प्रकार खिल उठाता जैसे उसका अपना बेटा ही उसे मिलने आया हो। ज्यों ही वह उसके पास पहुंचता, समद जू एक झटका खाकर उसको झट पहचान लेता। "अरे त्यया...पोशमाल का त्रिलोकी......बोलो भई कब आए। मेम ठीक ठाक है ना...बच्चे कैसे हैं...मेरा रसूल तुझे बुरी नज़र से बचाये ''

समद जू बातचीत का क्रम हमेशा इसी तरह आरम्भ करता। फिर धीरे-धीरे दोनों खुल पड़ते। और उसे सब का समाचार मिल जाता। उसे प्रोफेसर बर्नार्ड और समद जू के बीच एक विचित्र साम्य दिखाई पड़ता। दोनों प्यार से पूर्ण और खुश लगने वाले। मधुर

वृद्ध, दिल खोल कर बातें करने वाले । उनकी सफेद दाढ़ी में एक विशेष तेज और प्रकाश टपकता ।

आज वह कुछ वर्ष बाद फिर कश्मीर आया था । उसने जलता सिगरेट उंगलियों में पकड़ रखा था पर उसकी दृष्टि वितस्ता की ओर थी । वितस्ता मानों थम सी गई हो और विसटती सी बह रही हो । कहां वह पुराना दम-खम और वह भीड़-भाड़ । यह शोभा रहित और गन्दे घाट देख कर उसे वैराग्य हो आया । वह आज अपने को पराया सा अनुभव कर रहा था । उसके कई जिगरी दोस्त और साथी मर चुके थे जिन में 'समद जू' भी सम्मिलित था । नये उसे अनजान और भावुकता रहित जान पड़े । यह एहसास बढ़ता गया और इसमें जितनी वृद्धि होती गई, उतनी ही तीव्रता में अस्तित्व एक बोझ के समान लगने लगा ।

"कश्मीर में काफी धन आया" । वह सोचता रहा "भगवान इन्हें काफी धन दे पर मन तो ठंडे पड़ गये हैं इनके.. यखबस्ता हो गए हैं...वैर और लोभ ने सर निकाला है"

अन्दर उभरा वैराग्य बढ़ता गया जब उसने दुल्हन सी वितस्ता को कीचड़ के एक भयंकर खड्ड के समान देखा । उसे प्रोफेसर बर्नार्ड के शब्द याद आ गए जिन्हें वह उनका परिचय देते समय प्रायः दुहराता था । वह कहता :— आज तक क्या आपको इनका परिचय नहीं मिला ? यह उस सुन्दर देश के हैं जिसे कश्मीर कहते हैं । जहां ऋषियों और सन्तों की गोद में आध्यात्मिकता पनपी । प्रत्येक कश्मीरी में महात्माओं की साधना का मिश्रण विद्यमान हैं । यदि वह इसे ठीक रास्ते पर लगाने का प्रयत्न करे तो करामात कर सकता है ..यह है टी० नाथ...नाथ...yes (हां) नेथ नहीं । यह अशुद्ध उच्चारण है । नाथ का अर्थ है स्वामी । उदाहरण के लिए शिव नाथ...लार्ड शिव...टी० नाथ का अर्थ होता है...त्रिलोकी नाथ...त्रिलोकी नाथ...Load of three worlds (तीनों जगत का स्वामी) हिन्द की दो प्रसिद्ध तथा पवित्र नदियां हैं जेहलम और सिन्धु और जिन्हें इनमें केवल एक डुबकी लगाने का सौभाग्य प्राप्त हो उनके न केवल जन्म-जन्म के पाप धुल जाते हैं अपितु वे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं...और...और...यह जेहलम कश्मीर में ही जन्म पाता है, उभरता है और बड़ा होता है..." ।

इसके पश्चात जब प्रोफेसर बर्नार्ड अपना सारा अध्ययन उसके साथ मिलाते तो सब लोग देखते ही रह जाते । त्रिलोकी नाथ का रोम-रोम प्रसन्न हो उठता कि प्रभु ने कैसा देवदूत भेजा है जो उसे और उसकी जन्म-भूमि कश्मीर को इतनी महानता प्रदान कर रहा है । उसे इस सब का ध्यान आया तो वह विचलित हो उठा । उसे ख्याल आया कि वह उठे और मुट्ठियां बांध कर भाग चले, और दुबारा कभी यहां न आये ।

पर नहीं...नही ..एक डुबकी वह अवश्य लगायेगा नहीं...नहीं यह वह वितस्ता नहीं...यह एक गंदा नाला है...नहीं...नहीं । किन्तु प्रोफेसर बर्नार्ड के शब्द उसके कानों में बराबर गूंजते रहे ।

"शिवनाथ का अर्थ है लार्ड शिवा...त्रिलोकी नाथ का अर्थ होता है तीन लोक का स्वामी.." ।

उसने कानों में उंगलियां डाल दीं । किन्तु यह शब्द बराबर गूंजते रहे । मानो वह पागल हो गया हो । वह अपने साथ बातें करने लगा । शिवनाथ ने सारा ज़हर पिया और वह अमर हो गया । शेष ने अमृत पिया किन्तु वह अमरत्व प्राप्त न कर सके...और त्रिलोकी नाथ ..तीन लोक का स्वामी...कितना बड़ा है मेरा नाम । अर्थवान और तहदार

पर कितना क्षुद्र और साधारण हूं मैं...मैं..., मैं इस गंदगी-युक्त वितस्ता में नहीं नह सकता। उसे अपना आप हलका और घटिया जान पड़ा।

तुम...तुम...,वह उतरेगा, अवश्य उतरेगा...वह अवश्य नहायेगा...वह सारी गंदगी पी जाएगा हां हां।

उसने कपड़े उतारे ..पानी में उतरने से पूर्व उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये आकाश की ओर, और प्रार्थना करने लगा— "मेरे प्रभु! अब मेरी लाज रखना। यदि मैं यह मैल न पी सका तो मुझे इस वितस्ता से बाहर न निकालना"। इसके पश्चात उसने एक ही डुबकी लगाई और पानी के नीचे एक लम्बी साँस ली किन्तु आज कोई भी देख नहीं रहा था, कौन उतरा और कहां पर वितस्ता से बाहर निकल आया।

(हिन्दी रूपांतर— अर्जुनदेव मजबूर)

निवेदन

- प्रकाशित रचनाओं पर नियमानुसार उपयुक्त पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है।
- जम्मू-कश्मीर में कला, संस्कृति और साहित्य के आकलन और उसके विकास को रेखांकित करने वाली सामग्री को 'शीराज़ा' में वरीयता दी जाती है।
- रचनाएं कागज़ के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखकर अथवा टाइप करवा कर भेजें। कार्बन-कापी पर विचार नहीं किया जाता है।
- स्वीकृत अथवा विचाराधीन रचनाओं की सूचना यथासमय भेज दी जाती है। अस्वीकृत रचनाओं को लेकर किसी प्रकार के पत्राचार की अपेक्षा नहीं है।
- 'पुस्तकें और पुस्तकें' स्तम्भ के अन्तर्गत समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियां भेजना आवश्यक है।

—सम्पादक

हिन्दी की साहित्यिक-कृतियों का कश्मीरी अनुवाद :
एक बहु-आयामी समस्या

हरिकृष्ण कौल

साहित्य का माध्यम भाषा है। किन्तु भाषाओं और फलतः राष्ट्रों की सीमाओं से परे भी साहित्य की परिकल्पना उसकी समग्रता में की जा सकती है। इसी परिकल्पना या आवश्यकता ने 'विश्व-साहित्य' को अवधारणा को जन्म दिया है। परन्तु यह अवधारणा तभी कोई अर्थ रखती है जब एक भाषा या राष्ट्र का साहित्य अनुवाद के द्वारा दूसरी भाषाओं में भी उपलब्ध हो। वास्तव में अनुवाद ही राष्ट्रीय साहित्य को विश्व-साहित्य से जोड़ता है। विश्व-साहित्य की तरह ही, कदाचित अधिक स्पष्ट रूप में, भारतीय साहित्य की भी सत्ता है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता है। प्राचीन काल से ही कश्मीरी सहित भारत की विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य एक प्रकार की मौलिक एकता और समग्रता का आभास देता है। पर इधर कतिपय कारणों से ऐसा लग रहा है कि कश्मीरी का समकालीन साहित्य भारतीय साहित्य की इस केन्द्रीय धारा से कुछ अलग पड़ रहा है। यह बात निर्विवाद है कि प्रत्येक युग का साहित्य अपने में नया तथा अभूतपूर्व होते हुए भी परम्परा के साथ-साथ सही संदर्भ की भी अपेक्षा करता है। संदर्भ से यहां तात्पर्य वह समस्तर (Horizontal) रेखा है जो कृति को देश और परिवेश से जोड़ती है, जबकि परम्परा वह लम्ब (Vertical) रेखा है जिसकी इकाइयां इतिहास के विभिन्न कालखंड होते हैं। यदि तनिक गहराई से देखा जाय तो लगता है कि आज का कश्मीरी लेखक अपने संदर्भ से कुछ-कुछ कट गया है। हमारे देश में संवैधानिक और राजनीतिक स्तर पर जम्मू-कश्मीर राज्य को अवश्य एक सीमित स्वायत्तता प्राप्त है। इसके बावजूद यहां के जन जीवन, यहां की परिस्थितियों, यहां की समस्याओं ओर एक संवेदनशील मनुष्य को विचलित करने वाले प्रश्नों में कोई गुणात्मक अन्तर नहीं है। फिर भी वास्तविकता यह है कि देश के साहित्यिक मानचित्र पर कश्मीर शेष भागों से कुछ अलग पड़ा दिखाई देता है। सम्भवतः इसी अलगाव के कारण यहां पिछले दो एक दशकों में साहित्य सम्बन्धी कुछ ऐसे प्रतिमान विकसित हुए हैं, जिन्होंने कश्मीरी साहित्य को सही संदर्भ से काटकर पश्चिम के तथाकथित

आधुनिकतावादियों और रूपवादियों की जूठन पर आश्रित रहने के लिए विवश किया है। यह एक दुखद स्थिति है और यदि कश्मीरी में हिन्दी की साहित्यिक कृतियों तथा हिन्दी के माध्यम से अन्य प्रादेशिक साहित्य-रचनाओं के अनुवाद सुलभ हों तो इसका बहुत हद तक उपचार हो सकता है। हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं की कृतियों के अनुवाद कश्मीरी साहित्य को फिर से भारतीय साहित्य के साथ ही नहीं, उसकी अपनी ज़मीन से भी जोड़ सकते हैं।

किन्तु यहां 'कस्मै देवाय' की समस्या के कारण विकट स्थिति पैदा होती है। हिन्दी साहित्य का कश्मीरी में अनुवाद कौन करे, क्यों करे और किसके लिए करे? कश्मीरी लेखकों और कश्मीरी लेखन के साथ अध्यापकों, अधिकारियों और पाठकों के रूप में जुड़े लोगों में ९० प्रतिशत से अधिक संख्या उनकी है जो हिन्दी साहित्य ही नहीं, देवनागरी लिपि से भी अनभिज्ञ हैं। और जो कश्मीरी हिन्दी साहित्य मे किसी न किसी रूप में रूचि रखते है उनमें से बहुत कम 'कश्मीरी लिपि जानते हैं। कुछ ऐसे लोग ज़रूर हैं जो हिन्दी और कश्मीरी दोनों में रुचि ही नहीं रखते, अपितु दोनों भाषाओं के प्रति समान रूप से प्रतिबद्ध भी हैं। परन्तु संख्या में बहुत कम होने के कारण उन्हें उन सभी प्रकार की कठिनाइयों से दो-चार होना पड़ता है जो जनतन्त्र के इस युग में अल्प-संख्यकों की नियति बन गयी है। कश्मीरी साहित्य की स्थिति इस समय आइसबर्ग जैसी है। इस भाषा मे जितना कुछ रचा जाता है, उसका बहुत ही छोटा अंश छपकर सामने आता है। अत: जिस भाषा में मौलिक कृतियां ही बहुत कम छपती हों, जिसमें दो अर्द्धसरकारी त्रैमासिक पत्रिकाओं और एक गैर सरकारी अनियतकालीन लघुपत्रिका को छोड़ कोई पत्र-पत्रिका भी प्रकाशित नहीं होती हो, उसमें किसी हिन्दी कृति का अनुवाद कहां और कैसे छप सकता है? (उर्दू और अंग्रेज़ी कृतियों के अनुवाद की बात ज़रा अलग है। कश्मीरी बुद्धिजीवी हिन्दी, बंगला, मराठी आदि की अपेक्षा उर्दू या अंग्रेजी साहित्य से अधिक अपनापन अनुभव करते हैं। हालांकि यहां भी स्थिति बहुत कुछ आशाजनक नहीं है।) आज से कोई दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने एक प्रसिद्ध हिन्दी लेखक की एक बहुचर्चित कहानी को बड़े मनोयोग से कश्मीरी मे अनूदित किया और इसे छापने के लिए उस समय की सरकारी, अर्द्धसरकारी और गैरसरकारी पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों से काफी मिन्नतें कीं। परन्तु किसी ने भी वह अनुवाद नहीं छापा। उनका यह कहना शायद उचित ही था कि वह अनूदित कहानी पत्रिका में जितना स्थान लेगी उतने में दो मौलिक कश्मीरी रचनाएं छप सकती हैं। मेरे एक मित्र प्रो० मु० हु० ज़फर ने कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास 'दर्द लादवा' का हिन्दी से कश्मीरी में अनुवाद किया है। विडम्बना है कि इसी अनुवाद को कहीं छपवाने की कोशिश में ज़फर साहब और हमारे दूसरे मित्र इकबाल फहीम स्वयं कश्मीरी में एक पत्रिका 'वाद' निकालने के लिए मजबूर हो गये। यह स्थिति हास्यास्पद ही नहीं, त्रासद भी है। मौलिक रचना 'स्वांत: सुखाय' या 'शुद्ध आत्माभिव्यक्ति' भी हो सकती है। किन्तु यह संतोष या आत्म प्रवंचना भी एक अनुवादक का संबल नहीं हो सकती।

इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि कश्मीरी में हिन्दी कृतियों के अनुवाद बिलकुल नहीं होते है? होते हैं और काफी मात्रा में होते हैं। आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र से महीने में एक बार किसी हिन्दी नाटक या हिन्दी के माध्यम से किसी अन्य भारतीय भाषा के नाटक का अनुवाद बाकायदगी से प्रसारित होता है। प्रोग्रामों के आदान-प्रदान के सिलसिले में भी कविताओं, कहानियों, वार्ताओं के अनुवाद प्रसारित होते हैं। इतना ही नहीं, जब-जब

अखिल भारतीय स्तर पर किसी हिन्दी साहित्यकार की जयन्ती मनाई जाती है तो सरकारी या अर्द्धसरकारी संस्थाओं द्वारा उस साहित्यकार की रचनाओं का कश्मीरी में भी अनुवाद कराया जाता है। चाहे वह साहित्यकार सूर हो या तुलसी, पन्त हो या प्रेमचन्द। परन्तु ये अनुवाद देखकर अनुवाद की प्रक्रिया में अन्तर्निहित मूलभूत समस्याओं के अतिरिक्त कुछ दूसरी समस्याओं की ओर भी ध्यान जाता है। अनुवाद की प्रक्रियायें अन्तर्निहित मुख्य समस्या या प्रश्न यह है कि क्या सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद वास्तव में सम्भव है? क्या किसी रचना की वस्तु, थीम, रूप, ओवरटोन और अंडरटोन, जो बहुत हद तक रचना की भाषागत विशिष्टता में निहित होते हैं, अनुवाद के द्वारा अक्षुण्ण या सुरक्षित रखे जा सकते हैं? क्या एक भाषा में कही गई बात दूसरी भाषा में वैसी ही सुन्दरता और प्रभावोत्पादकता से रखी जा सकती हैं? बात को, या उसके वाच्यार्थ को ज्यों का त्यों रखने से उसकी व्यंजना और फलस्वरूप उसका असली अर्थ प्रभावित नहीं हो सकता? यदि रचना की व्यंजना और 'साहित्यिकता' की रक्षा की कोशिश की जाय तो क्या वस्तु में फेर-बदल होने के खतरे से बचा जा सकता है? अनुवाद होने पर कोई बात क्या बिल्कुल वही बात रहती है? ये प्रश्न तो किसी भी अनुवाद के विषय में उठाय जा सकते हैं। परन्तु जब उपरोक्त जयन्तियों आदि के सिलसिले में हिन्दी की साहित्यिक रचनाओं का कश्मीरी में अनुवाद होता है तो कुछ दूसरी समस्याएं भी पैदा होती हैं। प्राय: ऐसा होता है कि अधिकारियों के द्वारा पहले ही कुछ लक्ष्य और एक अन्तिम तिथि निश्चित की जाती है और अनुवादक की कोशिश यह रहती है कि वह जैसे तैसे अन्तिम तिथि से पहले ही निर्धारित लक्ष्य पूरा करे। हमारा अनुभव हमें बताता है कि इन हालात में मूल कृति के साथ अधिकतर अन्याय ही होता है। यह सही है कि किसी कृति का अनुवाद यथार्थ में दूसरी भाषा में उसकी पुनर्रचना होता है। पर यहाँ चर्चित इन अनुवादों में से अधिकांश को पुनर्रचना नहीं. केवल खानापूरी कहा जा सकता है। मई १९६० में स्वर्गीय सुमित्रानन्दन 'पंत' की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर आकाशवाणी ने पंत जी की ३७ कविताओं का कश्मीरी में अनुवाद कराया जिन्हें राज्य की सांस्कृतिक अकादमी ने 'व्यूर' नाम से एक संग्रह के रूप में प्रकाशित भी किया। हिन्दी की साहित्यिक कृतियों के कश्मीरी अनुवादों में इस पुस्तक का विशेष महत्व है क्योंकि इस में पहली बार आधुनिक काल के एक सुविख्यात हिन्दी कवि की प्रतिनिधि और उनकी विकास-यात्रा का परिचय देने वाली कविताओं के अनुवाद को एक पुस्तक के रूप में छापा गया है। पर पुस्तक के विषय में स्वयं इसके सम्पादकों का कहना है—"लगता है कि ये अनुवाद कुछ जल्दी में किए गये हैं। और इनके सुधार और परिष्कार के लिए महीना भर चाहिए था मगर हमें कुल तीन दिन किताबत कराने के लिए और दो दिन छपवाने के लिए मिले।" इस पर भी सम्पादकों की वह आशा कि संग्रह से कश्मीरी साहित्य भंडार में अवश्य कुछ वृद्धि होगी, दुराशा के अतिरिक्त और क्या हो सकती थी। संग्रह में गुलाम नवी 'फिराक' द्वारा किए गये 'एक तारा' सहित पंत जी की अनेक कविताओं के कश्मीरी अनुवाद भी हैं। 'एक तारा' कवि की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में से एक है और अनुवादक ने इसका हुलिया ही बिगाड़ दिया है। मूल कविता के छन्द में एक प्रकार की मन्थरता है जो एक निराले प्रभाव के निर्माण में सहायक है। कुछ शब्दों और वाक्यांशों की आवृत्ति से इस प्रभाव को गहराने का प्रयत्न भी दीखता है। इस प्रभाव को अनुवाद द्वारा अक्षुण्ण रखना शायद मुमकिन न था। पर अनुवादक ने अपराध की हद तक असाव-

धानी बरती है और अनेक स्थलों पर अनुवाद के नाम पर पद्यांशों का बिम्बों-प्रतीकों के झंझट से मुक्त सार-संक्षेप प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ मूल कविता की ये पंक्तियाँ लीजिए :—

झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल प्रशांति को रहा चीर/संध्या प्रशांति को कर गम्भीर ! / इस महाशांति का उर उदार, चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार/ज्यों बेध रही है आर पार... ।

गुलाम नबी फिराक ने इन पंक्तियों को कश्मीरी में यों अनूदित किया है :—

"फटिथ नेरान छु वटिलन हुंद तर्न्तुप यथ खमोशी मंज / दिवान संजीदगी यथि शांती हर सू / छ बोड पपि खामोशी हुंद सीन् कोताह / चसित हावस इवान वुत्यक्यन...

इतना ही नहीं। मूल बिम्ब-योजना को समझने में असमर्थता के कारण अनुवाद में कहीं-कहीं अर्थ का अनर्थ हुआ है :—

'लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर पड़ गई नील ज्यों अधरों पर / अरुणाई प्रखर शिशिर से डर... ।

इन पंक्तियों का अनुवाद देखिए :—

"ह्यचन प्यन्य रंग व रंग सोन र्‌ख त्‌ लहरन प्यठ / यिथन कुडरिस वंदस निश रो ख्यथ वोशलान छि दोशवै वुठ।..."

मूल में लहरों पर की स्वर्ण रेख और अधरों की अरुणाई, दोनों के नीला पड़ने की बात कही गई है। लेकिन अनुवाद में लहरों पर स्वर्ण रेख आकर प्रकट होती है और अधर लज्जा से अरुण ('वोशलान') हो जाते हैं। इसी प्रकार "नौका विहार" कविता के अनुवाद में मुज़फ्फर आज़िम ने "तावस बाला गंगा निर्मल" को "शिहिज गंगा जन अख जन्नत्‌च हूर" बताया है। अनुवादक का ध्यान शायद इस ओर नहीं गया कि बिम्ब और व्यंजना की दृष्टि से 'तापस बाला' और 'जन्नत की हूर' में आकाश पाताल का अन्तर है।

लेकिन इसके विपरीत मोहन 'निराश' और प्रो० पुष्प जैसे लोगों ने, जिनकी प्रतिबद्धता कश्मीरी और हिन्दी दोनों से हैं, अनुवाद में मूल के काव्य सौन्दर्य को काफी हद तक सुरक्षित रखा है। मोहन 'निराश' द्वारा किया गया 'भारत माता' और 'ताज' तथा प्रो० पुष्प द्वारा किया गया 'प्रथम रश्मि' का अनुवाद निःसदेह कश्मीरी साहित्य की श्रीवृद्धि करते हैं। 'गोडनिच ज़च' नाम से 'प्रथम रश्मि' के अनुवाद में पुष्प जी ने कविता की अनुभूति को उसी छन्द में, उतनी ही पंक्तियों में, उसी लहजे में और लगभग उसी डिक्शन में सफलतापूर्वक कश्मीरी में उतारा है। 'पर्वत-प्रदेश में पावस' कविता का अनुवाद मखन लाल 'बेकस' न किया है। बेकस चूंकि फिराक या आज़िम की तरह हिन्दी से अनभिज्ञ नहीं है इसलिए उसका अनुवाद कविता के मूलभाव को कश्मीरी में ठीक-ठीक उतार सका है।

कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में चूंकि भाषा की तथाकथित सृजनात्मकता की अपेक्षा अनुभव की प्रखरता को प्राथमिकता प्राप्त होती है, इसलिए इनके अनुवाद में अधिक कठिनाई पेश नहीं आती है। कश्मीरी में हुए प्रेमचन्द की कुछ कहानियों के अनुवाद इस बात के प्रमाण हैं। लेकिन कहानी नाटक में भी जहां कहीं अलंकारिकता या अनेकार्थता हो, उसे अनुवाद में सुरक्षित रखना मुश्किल हो जाता है और तब अनुवादक मूल बात में फेर बदल करने के लिए मजबूर हो जाता है। मोतीलाल क्यमू

ने अपने हिन्दी नाटक 'दर्पण अन्त:पुर का' का 'हरम खातुक आन्' नाम से स्वयं कश्मीरी में अनुवाद किया है। पर उपरोक्त कठिनाई के कारण ही मूल का—"महाराजाधिराज सत्तामोह वंश दीपक" अनुवाद में 'अडंग दीशुक बेडंग राज़ हो गया है। अपनी रचना के साथ आदमी कुछ भी कर सकता है। मोतीलाल क्यमू ने असल में अपने हिन्दी नाटक 'दर्पण अन्त:पुर' का कश्मीरी में अनुवाद नहीं किया है, बल्कि उसे कश्मीरी भाषा में नये सिरे से लिखा है। किन्तु किसी अन्य व्यक्ति की रचना का अनुवाद आपको इस प्रकार के स्वेच्छाचार या स्वच्छन्दता का अधिकार नहीं देता है।

इधर हिन्दी में आज काव्य भाषा थोथी आलंकारिकता तथा सायास विम्ब विधान या प्रतीक-योजना के आवरण को फेंक कर अपने नग्न रूप में समय और स्थिति से टकराती है। नागार्जुन, रघुबीर सहाय, धूमिल, जगूड़ी आदि कवि निरर्थक वाग्जाल और बिम्ब जाल को छोड़ एक नये प्रकार की सपाट बयानी से अपनी बात कहते हैं, जिसमें कहीं अधिक सृजनात्मकता है। अपने में यह शुभ लक्षण तो है ही, हमारे लिए इस में यह उत्साहवर्धक बात भी है कि अनुवाद में ऐसी कविताओं के काव्य-सौन्दर्य की बहुत हद तक रक्षा की जा सकती है। मोहन निराश ने—

"शस्तरुक मज म प्रछिव खारस / तस गुरिस प्रछिव / यसंदिस चांटिस मंज लाकप छि..." ।

आदि शब्दों में धूमिल की निम्न पंक्तियों में व्याप्त समूची अनुभूति और सारे दर्द को, बिना उसमें कुछ जोड़े या घटाए, कश्मीरी पाठक के लिए सुलभ किया है :—

"लोहे का स्वाद / लोहार से मत पूछो / उस घोड़े से पूछो / जिसके मुंह में लगाम है।"

राजस्थानी कहानी

तसलड़ा हार

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

ठाकुर भुजसिंह पीठ तकिये के सहारे एकदम ढीले होकर पसरे हुए थे। पंखा हाँफ-हाँफ कर चल रहा था। ऐसे तीन पंखे ब्रिटिश-काल में उन्हें तत्कालीन जिलाधीश रैनाल्ड साहब ने भेंट किये थे। भेंट करते समय अत्यन्त प्रसन्न होकर वे बोले थे 'वैल भुजसिंह, तुम सचमुच अच्छे आदमी हो। तुम्हारा हृदय विशाल है। हमने जो चीज मांगी, वह तुमने तुरन्त दे दी। मैं तुम्हारी 'सरबतड़ी' को अपने साथ विलायत ले जाऊंगा। वह एक कम्पलीट वूमैन है।"

सरबतड़ी ठाकुर की दरोगिन की जवान बेटी थी। वैसे वह ठाकुर की ही बेटी थी पर दरोगिन के पेट से जन्म लेने के कारण उसे ठाकुर की सगी बेटी जैसा मान नहीं मिला था।

सरबतड़ी अपूर्व सुन्दरी थी। साहब की नज़र चढ़ गई। बस मांग ली। ठाकुर ने सरबतड़ी के बदले विलायती तीन पंखे मांग लिये। साहब ने तुरन्त दे दिये। अदला-बदली का मामला हो गया!

पर बड़ी ठकुरानी के सामने सरबतड़ी दहाड़ मार कर रोयी तो वह ठाकुर के पास आकर बोली थी, "आपने यह पाप क्यों किया? आपने सरबतड़ी ..''?

उसके वाक्य को तीव्रता से काटते हुए ठाकुर ने दांत पीसकर कहा. "चुप रहो। मुझे सलाह देने की कोई जरूरत नहीं। तुम्हें क्या पता, मैंने कितनी सरबतड़ियां पैदा कर दी हैं?...देख, कितने शानदार पंखे हैं ..विलायत के बने हैं...कलेक्टर साहब ने भेंट दिये हैं। जात-बिरादरी में मान बढ़ेगा।"

ठाकुर हर आगन्तुक के सामने इन पंखों का सालों जिक्र करते रहे।

इस बात को पच्चीस साल हो गये थे। अंग्रेज चले गये पर ठाकुरों की ठकुराई और मनोवृत्ति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। बाहरी बदलाव से अबूझ कई लोग अपने ही सामन्ती परिवेश में जीते थे और अपने मुर्दा मूल्यों की रक्षा कर रहे थे।

एक दिन उनके गांव का जौहरी मोतीचन्द उनके पास आया।

मोतीचन्द का कलकत्ता में हीरे-मोतियों का व्यापार था। समय-समय पर गांव आता-जाता था। ठाकुर से भी मिलता था।

पिछली बार ठाकुर के पास आया था तब उसकी दृष्टि ठाकुर की सातवीं पत्नी केसरदे पर पड़ी।

केसरदे अनुपम थी। देखते ही युवा सेठ के मन में वासनाजनित लगावों का झंझा उठ गया।

इस बार भी उसकी केसरदे से अप्रत्याशित भेंट हो गयी और निगाहें टकरा गयीं। दोनों के होंठों पर एक अनचाही मुसकान नाच गयी।

सेठ सोचने लगा कि यह यहां सड़ रही होगी। तिल-तिल पिंजर हो रही होगी। मैं इसे प्राप्त कर लूं तो...? उसकी मनोवृत्ति उजागर हुई कि रुपली पल्लै तो रोई में भी चल्लै !

ठाकुर ने सेठ की आवभगत की। आदर से कहा, "पधारो सेठ जी पधारो ! कभी-कभी हमें भी कोई खास चीज़ दिखलाया कीजिए। दिखाने के पैसे तो आप नहीं लेंगे ?"

सेठ हंस पड़ा। बोला, "सचमुच दिखाने के पैसे तो नहीं लेते हैं ठाकुर सा !"

और उसने हीरे मोतियों की कई चीजें दिखलायीं। उनमें एक सतलड़ा हार भी था। सात लड़ियों का हार अद्भुत था। उसे देखते ही ठाकुर की आंखें चमक उठीं। लालच की स्फुलिंगें आंखों में दहक उठीं। अपने भद्दे होंठों पर जीभ फिरा कर वह बोला, "यह हार कितने का है ?"

"पैसों की बात छोड़िए, पहले हार देखिए। पसंद आये तो ले लीजिए...बहुत महंगा नहीं है।"

ठाकुर मन ही मन बोला, "समय की बात है वर्ना लठैत भेजकर हार मंगवा लेता पर अब...वाह ! हार वास्तव में अद्भुत है। यदि मिल जाय तो दूसरे ठाकुरों में मान बढ़ेगा। यह भेंट दे दे तो ..?"

फिर घर-बाहर की बातें होने लगीं। सेठ ने बातचीत के मध्य बिना प्रसंग केसरदे का कई बार नाम लिया। उसके अप्रतिम सौंदर्य की प्रशसा की। आने के पूर्व उसने फिर केसरदे के रंग-रूप की प्रशंसा की।

ठाकुर उस हार को मुफ्त में लेना चाहता था। उसके दिलोदिमाग मे वह हार कोहरे की तरह छा गया था। तन सौवणिया और मन-मोवणिया हार था वह। उसने हार को लेकर उसकी प्रशंसा में फिर कई वाक्य सोच डाले।

यादों के सिलसिले में अचानक उसे रेनाल्ड साहब की याद हो आयी। उसने तुरन्त सोचा कि यदि यह सेठ रेनाल्ड बन जाए तो ? सेठ ने भी बार-बार केसरदे का नाम लिया है।

ठाकुर के अन्तस् मे रंग-बिरंगे बवण्डर उठने लगे। अधिक उत्तेजना व तनाव के कारण वह सुस्त हो गया। उसकी झुर्रियों से भरी आकृति बीमार-सी लगने लगी।

ठाकुर जैसे स्वप्न से जगा हो, इस तरह चौंक कर बोला, "वह सतलड़ा हार अभी लाये हैं ?"

"हां।"

"मैं उसे लूंगा...जरूर लूंगा।" फिर उसने अपनी दासी को पुकार कर कहा, "सुग्गा ! अपनी सबसे छोटी ठाकुरानी को जाकर कह कि वह खुद शर्बत लेकर आये।"

उसके जाने के बाद ठाकुर फिर उस हार को लेकर सोचने लगा, "कितना मोहक है हार, रानियां-महारानियाँ ही ऐसे हार पहनती हैं । हीरे ऐसे चमक रहे हैं जैसे बोल रहे हैं। ऐसे दपदप कर रहे हैं जैसे मणिधर सांप ने मणियां बिखेर दी हों। इस हार को लेना है...पर मुफ्त में मिल जाय तो मज़ा आ जाय। यदि ये सेठ भेंट दे दे तो इसका क्या अन्तर पड़ेगा ?"

"ठाकुर सा क्या सोचने लगे ?" सेठ ने पूछा !

ठाकुर फस से हंस पड़ा। फिर पलकें नचाता हुआ बोला, "सेठजी ! मैं सोच रहा था।" वह संभल कर झूठ बोला, समय कितना बदल गया है ? समय की शक्ति के समक्ष सूरमाओं को भी धूल चाटनी पड़ जाती है। आप तो जानते ही हैं कि हमारे घर की औरतें खिड़की से झांक नहीं सकतीं थीं, आज कारों में घूमती रहती हैं। यदि बड़े अतिथि का वह आदर न करें तो अतिथि अपमान समझता है।...आप कितने बड़े व्यापारी हैं ! पहले आप हमारी रैयत थे पर अब बराबर के आदमी बन गये हैं । यदि हमारे घर की प्रमुख सदस्या आपका आदर न करे तो आप बुरा मानेंगे न ? कलकत्ते के कितने बड़े जौहरी हैं आप ? लीजिए ठकुरानी जी आ गयी हैं।"

ठकुरानी केसरदे की रंग उड़ी साधारण पोशाक थी । और सिर पर 'बोर' बंधा था

तभी ठाकुर को खों-खों कर के खांसी आने लगी। खंखार थूकने के लिए वह लपक कर बाहर चला गया। यह खांसी उसने जानबूझ कर की या स्वाभाविक रूप से हुई, यह कहना कठिन है ।

एकांत पाते ही सेठ ने वह हार केसरदे के पांवों में डालते हुए कहा, "पहले मेरा मुजरा मानिए केसरदे जी । फिर इस हार को देखिए...ठाकुर सा इसे लेना चाहते हैं ?"

"मुझे सब पता है । मुझे शर्बत लाने के लिए तभी कहा गया है ।" उसने तिक्त स्वर में कहा ।

"फिर आप यह भी जान गयी होंगी कि ठाकुर की नीयत क्या हैं ? उसकी नज़र में अपनी 'लुगाई' का मोल क्या है । एक पांच-दस हजार के हार के लिए उन्होंने आपको मेरे सामने पेश कर दिया । यही उनकी नैतिकता है।...मैं झूठ नहीं बोलता, मैं भी पहली नज़र में आपके अपूर्व रूप पर मुग्ध हो गया था । शायद प्रथम दृष्टि प्रेम इसे ही कहते हैं। मैं आपको चाहने लगा हूँ । और आपका यह लालची पति मेरे इस हार को मुफ्त में लेना चाहता है। यदि इसके बदले में आपको मांग लूं तो यह ना-ना कहते हुए आपको मुझे दे सकता है।...इसे बस यह हार चाहिए ।...यह हार को मुफ्त में पाना चाहता है। आप इस नरक से निकल कर मेरे साथ चलना चाहती हैं तो आप मुझे थोड़े अन्तराल के बाद पान का बीड़ा देने आइए। मैं फिर आधी रात को आपका महादेव पीपल पर इन्तजार करूंगा । कलकते ले चलूंगा। आप ठाकुर सा की कोई चिंता न करें। यह हार के बदले कुछ भी दे सकते हैं । सोचिए, मुझे आप बहुत पसंद हैं ।"

ठाकुर के आते ही केसरदे चली गयी ।

ठाकुर फिर बैठ कर हार की बनावट की प्रशंसा करने लगा, "यह हार किसी नामी गिरामी सुनार का बनाया हुआ है ।"

सेठ दंभ से बोला, "यह विलायत का बना हुआ है ।"

सेठ जानता था कि विदेश के नाम पर ठाकुर ने केवल विलायत का नाम ही सुना हुआ है ।

"मुझे पहले ही संदेह हो गया था। सच सेठजी, विलासत के ठाट-बाट ही निराले हैं। मेरे एक खास दोस्त थे रैनाल्ड। यह विलायती पंखा है न ?" उसने पंखे की ओर संकेत करके कहा, "ऐसे तीन पंखे मुझे रेनाल्ड साहब ने भेंट दिये थे। आज तक खराब नहीं हुए। हवा भी खूब देते हैं।"

सेठ ने गर्व से कहा, "मेरा यह सतलड़ा हार ऐसा बना हुआ है कि उसे सात पीढ़ी पहनेगी। आप चाहें तो सतलड़े के सात हिस्से करके अपनी सातों ठकुरानियों को पहना सकते हैं ? वैसा ही प्रभाव रहेगा, यही इसकी विशेषता है।"

"बेशक।"

फिर वे इधर-उधर की बातें करने लगे। सेठ को केसरदे का व्यग्रता से इन्तजार था। वह सोच रहा था — पैसे का दांव खाली नहीं जाना चाहिए।

तभी केसरदे पान का बीड़ा लेकर आ गयी।

ठाकुर ने उल्लसित होकर कहा, "यह बड़ी सलीकेवाली लुगाई है।"

केसरदे ने उसे घृणा भाव से देखा।

फिर वह लपक कर भीतर चली गयी।

सेठ ने ठाकुर को हार सौंपते हुए कहा, "यह हार आप रख लीजिए.. पैसों की चिंता करने की ज़रूरत नहीं। मुझे रेनाल्ड से कम मत जानिए...आपकी केसरदे हार से कम सुन्दर नहीं है।"

ठाकुर बेहयाई से ही-ही हंसने लगा।

० ० ०

दूसरे दिन सुबह-सुबह बड़ी बूढ़ी ठकुरानी क्रोध में भरी हुई ठाकुर के पास आयी और गरज कर बोली, "केसरदे कहां है ?"

नशे की पिनक में ठाकुर जिंदा मक्खी निगलते हुए बोला, "मुझे क्या पता ? मैं उसके चींचड़ की तरह थोड़े ही चिपका रहता हूँ।"

"कानों में कौर मत लीजिए ठाकुर सा।...आपको सब पता है। आपको सतलड़ा हार मिल गया न ? केसरदे से अदला-बदली, छिः।

ठाकुर अपनी में आ गया। गालियां देता हुआ बोला, "खूसट ! जबान ज्यादा बढ़ गयी क्या ? तू तो खुद कहती थी कि केसरदे चोखी नहीं। छिनाल भाग गयी होगी।"

अचानक गिरगिट की तरह रंग बदल कर ठाकुर विनम्र स्वर में बोला, "सेठ ने मुझे यह हार भेंट किया है...आखिर मैं उसका ठाकुर हूं न ? सतलड़ा हार है – आप पहनेंगी इसे ?"

एक घुटी हुई चीख बूढ़ी ठकुरानी के मुंह से निकली। आवाज़ मरी मरी थी, "मैं इस हार पर थूकती हूं...केसरदे की कीमत पर यह हार...।"

ठाकुर उसे चांटा मारता हुआ गरजा, "चुप रह चुड़ैल...बक-बक ज्यादा करने लगी है। गर्दन धड़ से अलग कर दूंगा।...एक भाग गयी, उससे कौन-सी कमी हो गयी आपके रावले में ? एक की जगह दस ले आऊंगा। जागीरदार-जमींदार और डेरेवालों में लड़कियों की कोई कमी है ? कंकर-पत्थर समझते हैं हम बेटियों को...भलाई इसी में है कि इस बात को यहीं पर जमींदोज करदो। समझीं।"

फिर वह अनंत तृष्णा व लालच के साथ बोला, "यह हार कितना शानदार है। इसके हीरे तारों की तरह जगमग कर रहे हैं। मुझे सेठ ने भेंट दिया है। बड़ा आदमी हूं न? बस, इतना ही याद रख मेरी पतिव्रता।"

ठाकुर ने मूछों पर ताव दिया। उस समय चौकीदार भाग कर आया। वह घबरा कर कहने लगा—"ठाकुर सा! तोरणद्वार के गुम्बद टूट गये हैं। प्रोल गिर गयी है।"

ठकुरानी चली गयी। ठाकुर अब भी हार को निहार रहा था। अफीम का टुकड़ा मुंह में लेकर संयत स्वर में बोला, "अरे गुम्बदों के नीचे कोई मिनख और जानवर तो नहीं मरा?"

एक लंगड़ा और बहरा सन्नाटा पसर गया।

लद्दाख में बौद्ध धर्म का उद्भव एवं विकास कब और कैसे

जमयङ ग्यलछन

तथागत भगवान् शाक्यमुनि को इस कल्प का चौथा बुद्ध माना जाता है। वैसे इस कल्प के अन्त तक एक हज़ार बुद्ध इस लोक में आएंगे। उनमें से तीन ने भगवान् शाक्यमुनि से पहले इस लोक में आकर धर्मचक्र प्रवर्तन किए थे, ऐसी बौद्धों की मान्यता है।

भगवान् शाक्यमुनि ने भारतवर्ष में तीन बार धर्मचक्र प्रवर्तन किया था। यद्यपि इतिहासकार केवल प्रथम धर्मचक्र को ही सही मानते हैं, जिसमें उन्होंने वारणसी के ऋषि-पतन मृगदाव में पांच वर्गीय भिक्षुओं को प्रथम बार धर्मोपदेश दिया था।

वास्तव में शाक्यमुनि से ही बौद्ध धर्म, दर्शन तथा संस्कृति का उद्भव हुआ। बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् भदन्त महाकाश्यप, आनन्द, श्वानवस्त्र, उपगुप्त, धिधिक क्रृष्ण तथा महासुदर्शन जसे प्रकाण्ड विद्वान भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म, दर्शन, साहित्य तथा संस्कृति का विकास किया। इन्हें बौद्ध वांग्मय में सप्तशासन परम्परा की संज्ञा दी जाती है।

तत्पश्चात आचार्य नागार्जुन, आर्यदेव, असंग, वासुबन्धु, दिङ्नाग तथा धर्मकीति जैसे महापुरुषों ने बौद्ध वांगमय का आश्चर्यजनक विकास किया जिन्हें बौद्ध इतिहास में षटालंकार के नाम से जाना जाता है। इसी तरह आचार्य गुण प्रभा तथा शाक्य प्रभा ने विशेष रूप से बौद्ध विनय का विकास किया। इसलिए इन दोनों को उत्तम द्विआचार्यों के नाम से जाना जाता है। इस तरह के अनेक बौद्ध विद्वान आचार्यों ने भारतवर्ष में बौद्ध धर्म, दर्शन, साहित्य, कला तथा संस्कृति का भली-भांति प्रसार व प्रचार किया।

भोट देश में सर्वप्रथम राजा ल्ह-थो-थोरी नन-वन [२५४-३७३] के काल में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित करण्ड सूत्र, चिन्तामणि-धारणी तथा एक और ग्रन्थ राजा के हाथ में पहुंचा। राजा स्रो-चन स्गमपो [७९०-८४४] के काल में बौद्ध धर्म की नींव स्थिर हो गयी तथा राजा ठि-स्रोङ ल्दे-चन [८वीं शती] के काल में पूर्णतया विकास हुआ। उस समय भारतवर्ष के अनेक विद्वान आचार्यों को भोट देश में निमन्त्रित किया गया। इतना ही नहीं वैरोचन आदि एक सौ आठ लोचावा [अनुवादक] भी हुए। लोचावा तथा

भारतीय आचार्य दोनों ने मिलकर बौद्ध धर्म, दर्शन, तन्त्र, साहित्य, कला, चिकित्सा आदि से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों का संस्कृत तथा अपभ्रंश से भोटी भाषा में अनुवाद किया जो आज भी कनजुर तथा स्तनजुर के नाम से सुरक्षित हैं। भारतीय आचार्यों में से आचार्य पद्म सम्भव तथा आचार्य शान्तरिक्षत जैसे प्रकाण्ड विद्वानों तथा सिद्धपुरुषों ने न केवल भारत में अपितु भोट देश में भी अनेक विहारों का निर्माण किया। साथ ही साथ बौद्ध वांग्मय के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। परन्तु राजा लङ दरमा [९०६] ने भोट देश में बौद्ध विहारों को नष्ट कर डाला। प्राय: कुछ वर्ष तक बौद्ध धर्म का नाम तक समाप्त कर दिया गया था।

ग्यारहवीं शताब्दी में महापण्डित आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान भी भोट देश पधारे तथा बौद्ध धर्म के पुनरुद्धार के लिए महत्वपूर्ण काम किए। उनके अनेक विद्वान शिष्य भी भोट देश में निकले। उनमें से डोम-स्तोन ग्यल वङ जुङ नस [१००४-१०६४] तथा राजा जङ्छुब ओद प्रमुख रहे। इसी काल में महानुवादकलोचावा रिन-छेन जङ पो भी हुए। उन्होंने संस्कृत से सूत्र, तन्त्र तथा चिकित्सा आदि से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों का भोटी भाषा में अनुवाद किया। जब आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान भोट देश पहुंचे, उस समय वे अस्सी वर्ष के थे।

भोट देश में धीरे-धीरे महायान बौद्ध के प्रमुख चार सम्प्रदायों का विकाम हुआ जो निङमा, फाग्युंद, साक्य तथा गेलुग नाम से विख्यात हैं।

आचार्य लों-गेन-रब-जम "[१३०८-१३६३[मर-प-छोस क्यो-लोटोस [१०१२-११९९] सा-छेन कुन-ग निङपो [१०९२-११५८] सौनम चेमी, आचार्य टग-प-ग्यल-छत, साक्य पण्डित कुम-ग-ग्यल-छन तथा छोस-ग्यल-फगस्-प [१२३५-१२८०] आचार्ग चोङ-ख-प, ग्यल-छब-तरमा-रिन-छन तथा "खसडुब-गे-लेगस्-पल जङ" आदि भोट देश के सिद्धों तथा आचार्यों ने बौद्ध धर्म का प्रभाव लद्दाख में भी पड़े बिना नहीं रह सका। लद्दाख भोट देश की पश्चिमी सीमा पर स्थित है।

१०वीं शताब्दी में स्कीद-ल्दे-निमा-गोन [९७५-०००] ङ-रिस पहुंचे। उनके तीन पुत्र हुए। ल्ह-छेन-पल-ग्यो-गोन, टशी गोन तथा ल्दे चुग गोन। निमा गोन ने अपने तीनों पुत्रों को राज्य विभाजित कर दे दिया। पल-ग्यी गोन को मध्य लाख, टशी गोन को कु-गे तथा पुरङ ओर ल्दे चुग गोन को जङ स्कर, स्पिति प्रदान किया। उस समय पल-ग्यी-गोन ने शे में सर्वप्रथम एक राजमहल बनवाया जो खण्डहर के रूप में विद्यमान है। राजा बौद्ध होने के कारण लद्दाख से भी बौद्ध धर्म का प्रसार-प्रचार करने में लगे रहे। "सज्जन पुरुषों का स्वभाव ही समस्त प्राणियों के सुख का आधार बौद्ध शासन का विकास करना तथा परोपकार करना होता है।" उसी के अनुरूप पल-ग्यी गोन ने राष्ट्र के सभी निवासियों को त्रिशरण गमन, मणि आदि तान्त्रिक धारणियों को जपने के लिए नियम-बनाया। क्योंकि त्रिशरण गमन के बिना बौद्धों के अन्तर्गत गणना नहीं की जा सकती।

पल-ग्यी-गोन के दो पुत्र हुए। बड़े का नाम छोस-गोन तथा छोटे का नाम ग्रो-गोन था। छीस-गोन [१०२५-५०] के राज्य काल में ही लद्दाख के सुविख्यात लोचावा रिन्छेन जङपो [९५८-१०५१] आये। लेह के पास ठिग-से के नरमा नामक स्थान पर एक विशाल बौद्ध विहार का निर्माण किया जहाँ आज केवल दीवार आदि कुछ अवशेष ही विद्यमान हैं। कहा जाता है उस विहार के मुख्य भवन में एक हजार भिक्षु एक साथ रह कर पूजा-पाठ कर सकते थे। नरमा में ही रिनछेन जङपो ने आठ देवालयों तथा एक सौ आठ

स्तूपों का भी निर्माण कराया। कुछ स्तूप आज भी विद्यमान है।

अलची सुम-दा और नङग्यु तीन गांव में भी लोचावा ने देवालयों तथा स्तूपों का निर्माण कराया इन देवालयों का निर्माण करने हेतु कश्मीर से ३२ कलाकार लाये गए थे। आज नौ सौ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् भी ये देवालय पूर्ववत अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं।

अलची के विषय में राहुल सांस्कृत्यायन ने अपनी यात्रा-पुस्तक के पन्नों में उल्लेख किया है कि यदि कला का यह रत्ननिधि किसी विदेश में होता तो पूरा स्वर्ण से ढककर रखा गया होता, परन्तु हमारी सरकार को अभी तक इस प्रकार की राष्ट्रीय महत्व की सम्पत्ती के विषय में तनिक भी चिन्ता नहीं है।

राजा ल्ह-छेन ग्यल-पो [१२५०-१२७५] के समय लिकिर गोम्पा का निर्माण हुआ। राजा ने स्वयं व्यय करके इस गोम्पा को बनवाया और भिक्षु संघ की स्थापना की। इस राजा ने लद्दाख में बौद्ध-धर्म, दर्शन, कला, साहित्य तथा संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

राजा नाग-लुक [११५०-११७५] ने वां-ले तथा वल-त्से में एक-एक राजमहल बनवाया। लद्दाख के निचले भाग [शाम] में राज्य करते हुए बौद्ध धर्म का प्रचार किया और लोगों को इस धर्म में प्रेरित भी किया।

टशी-गोन [१२२५-१२५०] ने वज्राग्र तथा सर्वदुर्गति परिशोधन राजा जैसे महत्वपूर्ण तान्त्रिक ग्रन्थों को स्वर्ण अक्षरों में लिपिबद्ध कराया।

राजा नोटुग (१३००—१३२५) ने उस समय के सुप्रसिद्ध लामा स्क्योम—प जिन—तेन—गोनपो का दर्शन किया। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक उपदेश उनसे सुने और लद्दाख में बौद्ध धर्म के विकास कार्य में दिन-रात लगा रहा। कनजुर (बुद्ध वचन) के समस्त एक सौ आठ ग्रन्थों को दो बार लिखवाया। इतना ही नहीं तान्त्रिक मण्डलों का भी निर्माण कराया।

राजा ठि-चुग-दे[१३७५-१४००]ने लेह में एक सौ तथा साबू में दो सौ स्तूपों का निर्माण कराया। न केवल वे स्वयं पुण्यार्जन में लगे अपितु अपनी प्रजा को भी पुण्यार्जन में प्रेरित करते रहे।

टगस्-प-बुम-ल्दे [१४००-१४४०] ने बौद्ध धर्म के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसने चङ सेमस-शेस-रब-जङपो को निमन्त्रित किया। स्पियुग गोम्पा का पुनरुद्धार किया। लेह में चम्बा मर-पो, स्नङ का चम्बा [मैत्रीनाथ] ति-रिू-आदि अनेक विशाल मूर्तियों तथा स्तूपों का निर्माण कराया। विशेष रूप से इस काल में लद्दाख में गेलुग-सम्प्रदाय की स्थापना की गई। इसी काल में मठों में साक्य-सम्प्रदाय के एक गोम्पा का निर्माण किया गया था जो आज भी उन्नति की ओर अग्रसर है।

राजा टगस्-प-बुम-ल्दे ने लेह में चुगलखखङ मरपो [लाल विहार] के आर्य मैत्रीनाथ की तिमन्जिलामूर्ति का निर्माण कराया जिसको दायीं ओर मंजुश्री घोष तथा बायीं ओर वज्रपाणि की मूर्ति एक-एक मंजिल की है। भित्ति चित्र के रूप में राजा ने अपने इष्ट देवों तथा धर्मपालों को चित्रित कराया है। इतना ही नहीं रत्नकूटसूत्र एवं लंकारवतारसूत्र आदि अमूल्य ग्रन्थों को लिपिबद्ध भी कराया है।

ति-सि-रू या तिठ-टशी-ओद-ठो का लेह में निर्माण कराया गया था। उसका बाह्य रूप चैत्य का है और भीतर एक सौ देवालय भी थे जो अभी खण्ड़हर की दशा में

पड़े हैं ।

राजा लोटो त-छोग-दान [१४४०-१४७०] ने भिक्षु लोटस नामक एक विद्वान भिक्षु को आमन्त्रित किया। वे राजा का निमन्त्रण स्वीकृत करके यहाँ पधारे। उस समय ठिग-से गोम्पा में खानपो जमयङ रिन-छेन थे। उन्होंने ठिग-से में एक विशाल भवन बनवाया जिसमें दस हजार भिक्षु एक साथ पूजा-पाठ कर सकते थे।

नृप टशी नामग्यल [१५००-१५३०] भी एक प्रकार का धार्मिक राजा हुआ। उसने भोट देश के महाविहारों की सेवा की। बुद्ध वचन [कनजुर] के एक सौ आठ ग्रन्थों को लिपिबद्ध कराया। इसके अतिरिक्त टशी नामग्यल ने अनेक मूर्तियों का भी निर्माण कराया।

जमयङ नमग्यल [१५६०-] ने भी लद्दाख में बौद्ध धर्म के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। भोट देश से एक महान विद्वान भिक्षु छौसजे दन-म को आपने यहाँ निमन्त्रित किया और तत्पश्चात अपने राजगुरु के रूप में स्वीकार किया। गुरु के आदेश पाकर उन्होंने पियङ में एक गोम्पा बनवाया जो आज भी फल-फूल रहा है। इतना ही नहीं परम पूजनीय छे-छङ रिन-पो छे जो कि डिगुङ काग्युंद सम्प्रदाय शासनाधिपति भी हैं, जिनकी देख-रेख में अब और भी प्रगति हो रही है।

राजा जमयङ नामग्यल ने काग्युंद सेर-टेङ नामक ग्रन्थों को स्वर्ण, रजत तथा ताम्बे से लिपिबद्ध कराया। धर्मराज होने के कारण बलतीस्तान के शासकों ने लाभ उठाने का विचार किया और लद्दाख पर आक्रमण करने लगे। उन्होंने यहां के अनेक गोम्पाओं, राजमहलों तथा स्तूपों को नष्ट कर डाला। इतना ही नहीं अनेक अमूल्य मूर्तियों तथा ग्रन्थों को अग्नि स्वाहा कर दिया जिसकी क्षतिपूर्ति बहुत ही देर से हो सकी। अनेक भिक्षुकों को मौत के घाट उतार दिया। लद्दाखियों ने अपने प्राण देने में संकोच नहीं किया किन्तु प्राचीन काल से आ रही अपनी बौद्ध संस्कृति को कदापि समाप्त करने नहीं दिया। यही कारण है कि भारत के मैदानी इलाके इतना विशाल होने पर भी अपनी बौद्ध संस्कृति को सम्भाल नहीं पाये परन्तु लद्दाख में ई० पू० पांचवीं शती से लेकर आज तक बौद्ध संस्कृति पूर्ववत् सुरक्षित रही है।

जमयङ नामग्यल तथा ग्यल-खातुन दोनों को दो पुत्र हुए बड़े भाई का नाम सिंगे नामग्यल तथा छोटे भाई का नाम नुबूं नामग्यल अत्यन्त साहसी, वीर तथा धार्मिक राजा हुआ। इसके जीवन काल मे लद्दाख का खूब विस्तार हुआ तथा हेमी, चेमड़े तथा टशी स्गङ जैसे विशाल गोम्पाओं का निर्माण भी हुआ। सिंगे नामग्यल ने सन् [१५९०-१५२०] तक लद्दाख में राज किया। इस काल में लेह के राजमहल, बसगो के आर्य मैत्रीनाथ की तीन मंजिल की मूर्ति आदि का निर्माण करके न केवल बौद्ध धर्म की नींव को स्थिर किया अपितु बौद्ध मूर्ति कला तथा चित्र कला के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इतना ही नहीं कंजुर के एक सौ आठ ग्रन्थों को स्वर्ण, रजत तथा ताम्बे से लिखवाया जो जीर्ण रूप में आज भी लेह और वसगो के राजमहलों में विद्यमान हैं।

कंजुर ही नहीं स्तनजुर [भारतीय आचार्यों द्वारा विरचित ग्रन्थ] के दो सौ से अधिक ग्रन्थ हैं, सबके सब लिपिबद्ध कराये। उस समय के प्रसीद्ध लिपिकार साबू स्पोन के नाम-ख स्पलगोन था। वह न केवल लिपिकार ही था अपितु लेखक भी था। उसके द्वारा लिखी गई पर्याप्त कविताएं आज भी उपलब्ध हैं। सिंगे नामग्यल के राजगुरु लामा स्तग-छङ रस-प थे। वे महासिद्ध पुरुष थे। वे भोट देश के चार महासम्प्रदायों में से काग्युंद

के अनुयायी थे। अत: सिगे नामग्यल के युग में काग्युंद सम्प्रदाय का लद्दाख में खूब विकास हुआ ।

सिंगे नामग्यल के तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ भाई का नाम दे-ल्दन-नामग्यल [१६२०-१६४०] था। वह अपने पिता की भांति साहसी, कार्यकुशल तथा धार्मिक स्वभाव का था। पिता जी के देहान्त के पश्चात उन्होंने अपने पिता के स्मारक हेतु शे में ताम्बे पर सोना चढ़ा कर भगवान बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा का निर्माण किया जो तीन मंजिल की थी और एक स्तूप का भी निर्माण कराया जो आज भी पुण्यार्जन हेतु विद्यमान है। इसी तरह माता ग्यल-खतून के स्मारक के लिए लेह हाउसिंग कलोनी के पास सौ पच्चास कदम के एक मग-थङ [पत्थरों पर खोदे हुए मन्त्रों तथा मूर्तियो से अलंकृत दीवार] बनवाया। जो आज भी पूर्ववत् विद्यमान हैं। इतना ही नहीं लेह के राजमहल के भीतर आर्य अवलोकेश्वर तथा शाक्यमुनि की दो मंजिल की मूर्तियों का भी निर्माण कराया। परन्तु ये मूर्तियां जोरावर सिंह के आक्रमण काल में विनष्ट हो गई।

राजा निमा नामग्यल [१६८०-१७८०] लद्दाख के इतिहास में एक प्रसिद्ध राजा हुआ है। इसने भी बौद्ध धर्म के विकास के लिए उल्लेखनीय कार्य किया। लेह चोगलमसर के रास्ते पर एक लम्बा मण-थङ बनवाया, जो आज भी श्रद्धावानों के पुण्यार्जन के साधन के रूप में विद्यमान है। लद्दाखी लोग इसे ज-नङमणि रिङमो कहते हैं। 'ज' का अर्थ चट्टान, 'नङ' का अर्थ बीच में तथा रिङमो का अर्थ लम्बे से है अर्थात चट्टानों के बीच में निर्मित लम्बे मन्दिर। इसी राजा ने अमूल्य ग्रन्थों की छपाई के लिए काष्ठा ब्लॉक खुदवाया जिनमें से कुछ आज भी प्रयोग में आ रहे हैं।

राजा छे तन नामग्यल [१७८०-१७९०] बहुत अच्छे स्वभाव का था। वह हमेशा प्रजा की भलाई के लिए सोचता था। वह फारसी, कश्मीरी तथा शिक्यांग की भाषाओं का ज्ञाता था। इतना ही नहीं वह नीतिकुशल भी था। परन्तु लद्दाख की प्रजा के दुर्भाग्य के कारण केवल दस साल तक राज्य करने के पश्चात उनका देहान्त हो गया। तो भी अपने जीवन काल में बौद्ध धर्म के विकास के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। इसी काल लामा छुलठिम निमा ने रिजोङ गोम्पा की स्थापना की। इस गोम्पा में विशेष रूप से विनय का पालन होता आ रहा है। छुलठिम निमा ने रिजोङ के अतिरिक्त नुबरा में समस्तर लिंग गोम्पा को भी स्थापना को। दोनों गोम्पाओं में भिक्षु संघ की भी व्यवस्था की। गांव-गांव जा कर उन्होंने लोगों को धर्मोपदेश दिया। कई ग्रन्थों को रचना की। जो आज भी उपलब्ध हैं।

इसी तरह राजा सोनम नामग्यल (१८६६—१९४२) बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु तिब्बत से डिमुङ छुङ-छङ रिनपोछे को लद्दाख में आमन्त्रित किया। इनके बड़े पुत्र का नाम कुनजङ नामग्यल था, जिसका सन् १९२६ में जन्म हुआ और १९७४ में देहान्त। इस काल में क-छेन येशे तोनडुब, बकुला रिनपोछे, स्तग-न रिन्पोछे नवङ तोनयोद, गेरगन सोनम, ठिग-से खनपो चमसू-प-तनजिन. स्रस रिनपोछे आदि विद्वान तथा अवतरित रिनपोछाओं ने इस क्षेत्र में प्राचीन काल से आ रहे धर्म की सुरक्षा तथा विकास के लिए अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किये हैं।

कहानी

किसके लिए

डा० निर्मल चोपड़

गर्वमेंट गर्ल्ज़ हाई स्कूल का गेट—मीरा गाड़ी से नीचे उतरी और अहाते में कद रखते ही उसे ऐसा लगा जैसे उसका विगत जीवन उसके आगे साकार हो उठा हो। पच्चीस वर्ष पुरानी स्कूल की यह इमारत अब जीर्ण-शीर्ण अवस्था में थी। बरगद के पेड़ के पास से गुज़री तो महसूस हुआ कि उसकी नर्म टहनियां अब सख्त हो गई हैं और सारे पत्ते झड़ चुके हैं। वह इधर-उधर दृष्टि ऐसे घुमा रही थी जैसे अपनी लुप्त हुई पहचान को खोज रही हो या उस लड़की ढूंढ रही हो जिसने उंगली पकड़कर उसे आज यहां तक पहुंचा दिया है। इतने लोगों से घिरे होने के बावजूद भी वह कितना अकेलापन महसूस कर रही थी। उसके हृदय में एक तूफान-सा उठ रहा था।

उसे सम्मानपूर्वक बिठाया गया। समारोह आरम्भ होने ही वाला था। पच्चीस वर्ष पूर्व इसी स्कूल में पढ़ने वाली वह तुच्छ-सी लड़की आज एक उच्चाधिकारी बनकर पुरस्कार वितरण करने आई थी। स्कूल के लिए तो यह गौरव की बात थी, लेकिन उसे कितना अजीब-सा लग रहा था।

स्कूल के प्रिंसिपल माइक पर उसकी लगन एवं मेहनत की प्रशंसा कर रहे थे लेकिन वह न जाने किन अंधेरी सुरंगों में पहुंच कुकी थी जहां केवल एक नन्ही-सी लड़की और उसके आस-पास गूंजते ये शब्द थे—"देखो ना, मीरा तो चार आने वाले स्कूल में पढ़ती है—अरे यह तो चपरासी बनेगी और हम बनेंगे डाक्टर।"

"नही नहीं, मैं चपरासी नहीं बनूंगी। पापा मुझे बहुत पढ़ाएंगे। मैं तो अफसर बनूंगी—अपसर।"

"अरी जा-जा, कैसे बनेगी तू अफ्सर। तेरे पापा तो हमारी दुकान पर नौकर हैं और मां भी हमारे घर का काम करती है। तू भी हमारी नौकर है।"

"नहीं-नहीं मैं नौकर नहीं हूँ—मैं नौकर नहीं हूं"—और नन्ही लड़की बिलखने लगी।

"उठिए मैडम—अपने शुभ हाथों से इन बच्चों में पुरस्कार बांटिए और इन्हें अपने जैसा बनने की सीख दीजिए"—ये शब्द उसे सुरंगों से वापिस खींच लाए। उससे उठा नहीं

जा रहा है। कितनी थकी और बोझिल-सी लगती है वह। आखिर माइक तक आ ही गई। सब बच्चे कैसे देख रहे हैं उसे। बुझे—अभाव ग्रस्त से चेहरे। उसे हर चेहरे में वह छोटी लड़की दिखाई दी। "तुम सब अच्छी बनना। बहुत बड़ी बनकर मां-बाप एवं स्कूल का नाम रोशन करना"—कहते-कहते उसका गला भर आया। कितने आसान हैं ये शब्द बोलना और कितना मुश्किल है यहां तक पहुंचना—अनेक कंकरों भरे टेढ़े-मेढ़े रास्ते और लोगों की चुभती बातें—कितना कुछ खो गया है उसका यहां तक आते-आते। अब केवल शेष हैं अकेलेपन के ये गोल-गोल दायरे और उनमें घूमती वह।

समारोह का समापन—उसने पूरे स्कूल पर एक गहरी दृष्टि डाली और गाड़ी में बैठ गई। सबने प्रणाम में हाथ जोड़ दिए और उसने जबाव में हाथ हिलाया। गाड़ी ने रफतार पकड़ ली। इनाम पकड़े हुए बच्चियां कितनी प्यारी लग रही थीं—उसने सड़क पर चलती स्कूल की लड़कियों को शीशे में से देखा तो आंखें बन्द कर लीं—उसे बहुत कुछ याद आ गया—

"देखो चम्पा दाई की लड़की को इनाम मिला है।"

"अच्छा ! किस बात का ?"

"मिला होगा स्कूल में गन्दगी साफ करने का"—एक जोरदार ठहाका उसके कानों पर हथौड़े की चोट कर गया था।

मां का इतना अपमान—कितनी खुश-खुश लौटी थी वह स्कूल से प्रथम आने का पुरस्कार लेकर। लेकिन उसका सारा उत्साह जाता रहा। मां की विवश आंखों को देखकर उसका मन भर आया था। कितनी विवश थी मां। क्या वह यह काम करती यदि पापा होते तो—खेल का मैदान—रंगों का खेल—उसकी बारी—हां, रंग तो उसने चुन लिया था—गहरा लाल—व्हाट कलर डू यू वान्ट—आई वान्ट—तभी कानों में एक भयानक विस्फोट—"ऐ मीरा जल्दी से चल, तेरे पापा चल बसे।"

लाचार मां दहाड़े मार-मार कर रोती रही, नन्हा वीनू मां के सूखे बदन से दूध खींचता रहा। और वह स्तब्ध-सी खड़ी पापा को जाते देखती रही—

"पापा-पापा, मुझे लाल रंग की फ्राक सिलवा दो ना। लाल रंग मुझे बहुत ही अच्छा लगता है"—"सिलवा देंगे बेटे को अगले महीने"—पापा के ऊपर पड़ी यह सफेद चादर—माँ का यह सफेद पहनावा—और उसे लाल रंग से सख्त चिढ़ हो गई।

पापा के जाने के बाद उसके चेहरे पर कुछ अलग-सी रेखाएं खिंच गई। उसकी बच्चों जैसी चपलता कहीं लुप्त हो गई। वह बहुत ही चुप रहने लगी। खेलना और बाहर आना-जाना भी उसने कम कर दिया। बस, अपने में ही खोई रहती।

उसकी मां अस्पताल में दाई हो गई तो सभी रिश्तेदारों ने धीरे-धीरे किनारा कर लिया। उस दिन तो हद हो गई जब उसके सगे मामा-मामी अस्पताल में मां से ऐसे कन्नी काट गए जैसे जानते ही न हों। घर आ आकर मां फूट-फूटकर रोई तो उससे सहा नहीं गया। बाहर से तो वह गुमसुम खड़ी देखती रही पर भीतर ही भीतर उसने अनुभव किया कि उसका सांत्वना भरा हाथ मां के सिर पर फिर रहा है। वह मन ही मन में बुदबुदाई—मत रो मां मत रो। मैं तुझे इस स्थिति से उभारूंगी—तेरी मुक्ति का साधन बनूंगी। देखना, एक दिन सभी तेरे आगे झुकेंगे—तेरा सम्मान करेंगे। बस थोड़ी देर और ठहर जा।'

वीनू के बड़े होने के साथ-साथ उसकी फरमाइशें भी बढ़ने लगीं और ज़िद करने पर

अक्सर वह माँ से पिटता। उस दिन मीरा को उसका रूदन भीतर तक भेद गया और मन ही मन में उसने एक दृढ़ निश्चय किया—'जो मैंने सहा है, उसे तुझे नहीं सहने दूंगी—तू यह अभावों भरा जीवन नहीं जिएगा वीनू'—और वीनू की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उसने सोनल को पढ़ाना शुरू कर दिया। सोनल की मां नहीं है— जानकर उसे कितना दु:ख हुआ था। यह सहानुभूति की भावना ही उसे और सोनल के बड़े भाई विवेक को एक दूसरे के समीप खींच लाई थी। पर उसका लक्ष्य सदा प्रेम पर हावी रहा और एक दिन उसने निर्णय ले ही लिया—"नहीं विवेक, मुझे शादी के बन्धन में बंधने को मत कहो प्लीज़। यह मेरे जीवन की मंजिल नहीं। प्रेम महत्वपूर्ण नहीं, महत्वपूर्ण है जीवन की वास्तविकता। जीवन की इस जटिलता को मुझे खुद ही सुलझाना होगा—मां और वीनू के जीवन को नए अर्थ देने होंगे। मेरी नियुक्ति के इस आर्डर को देखकर माँ और वीनू की आंखों में एक चमक-सी कौंधी है, एक आत्मविश्वास-सा छलका है जिसे स्पष्ट देखा है मैंने। मैं जा रही हू विवेक। तुम अच्छी-सी लड़की देखकर शादी कर लेना।"

फिर एक आवेग, एक प्रवाह और एक सुखद अनुभूति।

वह चल पड़ी थी अपने लक्ष्य की ओर। धीरे-धीरे उनके मन का बोझ हलका होता गया—"मां ने नौकरी छोड़ दी है और वीनू ने अच्छे अंक प्राप्त कर कालेज में दाखिला ले लिया है।"

पर एक दिन उसके मन का बोझ न जाने क्यों बढ़ गया और उसके हृदय में खनककर कुछ टूटा—"विवेक ने शादी कर ली है और वीनू विदेश जाना चाहता है।" उसने एक गहरी सांस ली—वीनू को उसका त्याग बांध न सका, विदेश का मोह खींच ले गया। और विवेक......उसका सिर भारी हो रहा था।

गाड़ी झटके से रुकी तो उसने आंखें खोल दीं। 'उच्चाधिकारी मिस मीरा शर्मा'—उसने दरवाज़े पर लगी नेम प्लेट को देखा। वह गाड़ी से नीचे उतरी तो देखा, बालकनी में मां खड़ी मुस्करा रही है। मां की यह मुस्कान कितनी निर्जीव है—सीढ़ियों पर चढ़ते चढ़ते वह सोचने लगी—क्या वह अपने लक्ष्य में सफल रही है?

द्विमासिक **शीराज़ा** हिन्दी

८३

वर्ष २० / अंक ५

दिसम्बर ८६-जनवरी ८७

प्रमुख सम्पादक

मुहम्मद यूसुफ़ टेंग

सम्पादक

रमेश मेहता

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

सम्पादक

शीराज़ा हिन्दी

जे० एण्ड के० अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज, नहर मार्ग, जम्मू।

फोन : ५८५३

मुद्रक :

सन्देश आफसेट प्रिंटिंग प्रेस वीरमार्ग, जम्मू।

एक अंक : दो रुपये

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

अनुक्रम

लेख

कहानियां

कविताएं